ब्रह्मचर्य के साधन

[चतुर्थ भाग]

व्यायाम सन्देश

विषय प्रवेश

शौच दन्तधावन और मुख आदि अङ्गों की शुद्धि के पश्चात् और स्नान से पूर्व प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति विशेषतः ब्रह्मचारी को नियमित शारीरिक व्यायाम करना चाहिये। साधारणतया-चाहे स्त्री हो वा पुरुष, जो भी भोजन करता है, उसे व्यायाम की उतनी ही आवश्यकता होती है, जितनी भोजन की। इसका कारण स्पष्ट है, शरीर में व्यायामरूपी अग्नि न देने से भोजन ठीक नहीं पचता और वह शरीर का अङ्ग न बनकर उलटा हानि ही करता है। क्योंकि जिन खाद्य पदार्थों से रक्त आदि धातुओं का निर्माण होकर बल और शक्ति का सञ्चय होता है, उनके ठीक न पचने से वे सड़ने लगते हैं और शरीर में दुर्गन्ध उत्पन्न करके जहां अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण बनते हैं वहां मनुष्य के मन में अनेक प्रकार के दुष्ट विचारों को भी जन्म देते हैं, जिससे मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट होकर स्मरणशक्ति भी मन्द हो जाती है और उसे अपने कर्तव्य-कर्म का ज्ञान नहीं रहता। परिणामस्वरूप वह दुःखदायी विषयभोगों में फंस जाता है और यह विषय-वासना की अग्नि मनुष्य के स्वास्थ्य, शक्ति, सुन्दरता, स्फूर्ति और साहस आदि सद्गुणों को जलाकर

भस्मसात् कर डालती है। यहाँ तक कि मनुष्य की सबसे प्रिय वस्तु युवावस्था भी इसी की भेंट चढ़ जाती है। दुःखदायी बुढ़ापा आ घेरता है। मनुष्य का शरीर आलस्य, निर्बलता और रोगों का घर बन जाता है। जिससे लोक और परलोक दोनों ही बिगड़ जाते हैं।

स्वास्थ्य का महत्त्व

"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।" मनुष्य के जीवन को सफल बनाने वाला "पुरुषार्थ चतुष्टय" अर्थात्-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का आधार वा मूल साधन आरोग्य ही है। क्योंकि रोगी मनुष्य सांसारिक सुख की प्राप्ति के लिये न तो कृषि आदि व्यवसाय (धन्धे ही कर सकता है और न सन्ध्या, ईश्वरोपासना, ब्रह्मचर्य-पालन आदि धर्म-कर्म जो मोक्षप्राप्ति के साधन हैं उनके अनुष्ठान में समर्थ होता है। इसलिये संसार में सर्वोत्तम और सर्वप्रिय वस्तु स्वास्थ्य ही है। सांसारिक धनैश्वर्य तथा भोगविलास के सब साधनों के विद्यमान होने पर भी रोगी उनसे कुछ लाभ नहीं उठा सकता, उलटा उनको देख-देख कर दुःखी ही होता है। रोगी मल-मूत्र त्याग आदि आवश्यक कार्यों को भी दूसरे मनुष्यों की सहायता के बिना नहीं कर सकता। उसे प्रतिक्षण दूसरों का सहारा चाहिये और इस हर समय की पराधीनता के कारण रोगी का जीवन शुष्क, नीरस और अत्यन्त दुःखमय हो जाता है। रोगी होना ही साक्षात् नरक के दर्शन करना है। क्योंकि "सर्वं परवशं दुःखम्" "पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।"

स्वर्ग और नरक कहीं अन्यत्र नहीं हैं। स्वस्थ मनुष्य के लिये यह संसार ही स्वर्ग समान है। रोगी मनुष्य चाहे कितना ही धनी-मानी हो वह सर्वथा पराधीन होने से अत्यन्त दीन और दुःखी रहता है। वह एक दरिद्र, भिखारी से भी गया-बीता है। क्योंकि

उसे अपनी भूलों के कारण घोर नरक (दुःख) भोगना पड़ता है। बात तो यथार्थ में यही है—चाहे मनुष्य दरिद्र ही क्यों न हो, यदि वह पूर्ण स्वस्थ है तो वह धन के अभाव में भी धनवान् है। क्योंकि स्वास्थ्य-धन से बढ़कर कोई धन नहीं है। स्वस्थ मनुष्य ही स्वर्ग (सब सुखों) का उपभोग करता है। इसलिये हमारे पुरुषा ऋषि-महर्षियों ने सांसारिक सुख-अभ्युदय और पारलौकिक सुख-निःश्रेयस् (मोक्ष) की प्राप्ति का साधन आरोग्य वा स्वास्थ्य को ही माना है। इसलिये स्वास्थ्य ही हमारा सर्वस्व है और इसकी रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य है।

स्वास्थ्य और व्यायाम

स्वास्थ्य की रक्षा बिना व्यायाम के असम्भव है।

परमपिता परमात्मा ने हमें रोगी और दुःखी होने के लिये नहीं बनाया, हम तो दुःखों और रोगों को स्वयं बुलाते हैं और पुनः रोते और पछताते हैं। हमने स्वास्थ्य के मूलाधार व्यायाम को जब से छोड़ा तभी से हमारी वह भयंकर दुर्गति हुई है, जिसको लिखते हुए भी लज्जा आती है। आज क्या बालक, क्या युवा, सभी रोगी हैं। क्योंकि हम ऋषियों की प्यारी शिक्षा ब्रह्मचर्य और इसके मुख्य साधन व्यायाम को छोड़ बैठे और इनके स्थान पर विषयी, भोगविलासप्रिय और कामवासना के क्रीतकिंकर बन चुके हैं। आज के युवक और युवतियां व्यायाम से प्रेम नहीं करते। इन्हें अखाड़े और व्यायामशाला में जाना रुचिकर नहीं। इन्हें तो सिनेमा, थियेटर और नाचघर प्यारे हैं। नगरों में, सिनेमा घरों के आगे भारी भीड़ लगी रहती है और अखाड़े खाली पड़े रहते हैं। क्या हुआ एकाध सौभाग्यशाली व्यक्ति उधर मुख करता है। इतने पर भी स्वास्थ्य और बल की आशा करते हैं। हमारे युवक अखाड़ों में जाकर करें भी क्या ? क्यों

कि इन्हें तो दण्ड, बैठक और कुश्ती से इसलिये घृणा है कि कहीं इनके कोमल शरीर को अखाड़े की धूल वा मिट्टी न लग जाये और इनके सुन्दर वस्त्र वा शरीर ही न बिगड़ जायें। ऐसे ही व्यायामभीरु नपुंसकों (हीजड़ों) से यह देश भरा पड़ा है।

भोले युवकों को इतना भी ज्ञान नहीं कि यदि एक मशीन को वर्ष भर न चलाया जाये तो उसकी दशा कितनी बिगड़ जाती है। उसे पुनः चालू करने के लिये नई मशीन के मूल्य से भी कहीं अधिक धनव्यय कर देना पड़ता है, इसी प्रकार हमारा शरीर भी व्यायाम वा कार्य न करने से सर्वथा निर्बल, विकृत और रोगों का घर बन जाता है। पुनः यत्न करने पर भी ठीक होने को नहीं आता। सब जानते हैं कि तालाब का पानी स्थिर होने से ही सड़ता है और नदी झरनों का जल चलने के कारण ही निर्मल और कांच के सदृश चमकता है। इसी प्रकार व्यायाम न करने से भी रक्त का सञ्चार भलीभांति नहीं होता। इसलिये अनेक प्रकार के मल शरीर में रुकने वा एकत्रित होने से रक्त मलीन और गन्दा होकर अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण बनता है। व्यायाम से रक्त का संचार और शुद्धि होती है। सब अंगों में बल, स्फूर्ति और शक्ति आती है। व्यायाम लचक, वृद्धि, सौन्दर्य, कान्ति और बल को उत्पन्न करता है, सब अङ्ग प्रत्यङ्गों को पूर्ण और पुष्ट करता है। वास्तव में व्यायाम शरीर के लिये सबसे बढ़कर पुष्टिदायक और स्वास्थ्यप्रद है। उचित व्यायाम से प्रायः सभी रोग रुक जाते हैं। आज तक संसार में कोई ऐसा मनुष्य नहीं हुआ, जिसने बिना व्यायाम के परमारोग्य और स्वास्थ्य की प्राप्ति की हो। व्यायाम का अभाव वा आलस्य ही रोगों का स्रोत है। पूर्ण सुख और स्वास्थ्य की प्राप्ति का एकमात्र साधन व्यायाम ही है।

व्यायाम से लाभ

जैसा कि मैं पहले ही कह आया हूं स्वास्थ्य प्राप्ति का मुख्य साधन व्यायाम ही है। अब मैं इसकी पुष्टि में ऋषियों महर्षियों एवं अन्य अनुभवी व्यायाम आचार्यों का मत देता हूं। परम वैद्य महर्षि धन्वन्तरि का मत—

शरीरोपचयः कान्तिर्गात्राणां सुविभक्तता।
दीप्ताग्नित्वमनालस्यं स्थिरत्वं लाघवं मृजा ॥ १ ॥
श्रमक्लमपिपासोष्णशीतादीनां सहिष्णुता।
आरोग्यं चापि परमं व्यायामादुपजायते ॥ २ ॥

(सुश्रुत संहिता चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ३९-४०)

अर्थ—व्यायाम से शरीर बढ़ता है, शरीर की कान्ति वा सुन्दरता बढ़ती है, शरीर के सब अङ्ग सुडौल होते हैं, पाचनशक्ति बढ़ती है, आलस्य दूर भागता है, शरीर दृढ़ और हल्का होकर स्फूर्ति आती है, तथा तीनों दोषों की मृजा (शुद्धि) होती है।

श्रम (थकावट), क्लम (दुःख), प्यास, शीत (जाड़ा), उष्णता (गर्मी) आदि सहने की शक्ति व्यायाम से ही आती है और परम आरोग्य अर्थात् आदर्श स्वास्थ्य की प्राप्ति भी व्यायाम से ही होती है।

महर्षि पतञ्जलि जी चरक संहिता में इसी विषय में लिखते हैं—

लाघवं कर्मसामर्थ्यं स्थैर्यं क्लेशसहिष्णुता।
दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते ॥

(चरक संहिता सूत्रस्थान अध्याय ७ श्लोक ३१)

व्यायाम से शरीर में लघुता (स्फूर्ति, हलकापन, फुर्तीलापन), कार्य करने की शक्ति, स्थिरता, क्लेश तथा दुःखों का सहना, दोषों (कुपित-वात, पित्त, कफ) का नाश और (जठर) अग्नि की वृद्धि होती है।

हमारे प्रातः स्मरणीय ऋषियों ने इन श्लोकों में व्यायाम करने के लाभों का इतनी भली-भांति वर्णन किया है कि मानो गागर में सागर भर दिया है। जो भोजन हम प्रति-दिन करते हैं वह प्रथम हमारे पक्वाशय पेट में जाता है और वहां पेट की अग्नि जिसे जठराग्नि कहते हैं खाये हुये भोजन को पकाती है। भोजन पचने पर आमाशय से ही शेष अंगों को पहुंचता है तथा सारे शरीर को शक्ति और आरोग्य प्रदान करता है। जिसकी जठराग्नि ठीक कार्य करती है उसका खाया हुआ पौष्टिक भोजन व्यर्थ नहीं जाता और उसका पचकर रस बन जाता है। पौष्टिक सारभाग को तीव्र जठराग्नि मल भाग में नहीं जाने देती। जिसकी पाचनशक्ति वा जठराग्नि अच्छी तथा तीव्र होती है उसको भोजन अधिक मात्रा में शीघ्र पचकर रस आदि धातुयें बनती रहती हैं और ये रस, रक्त, —— वीर्य आदि सात धातुएँ शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाती और धारण करती हैं। इसलिए इनको धातु कहते हैं और धातुओं ही से शरीर का निर्माण, वृद्धि वा उपचय होता है और इनकी घटती वा ह्रास से ही शरीर का नाश होता है। इसलिए महर्षि धन्वन्तरि जी महाराज ने 'आषोडशादवृद्धिः' सोलह वर्ष से पच्चीस वर्ष की आयु तक वृद्धि अवस्था मानी है। इस आयु में वीर्यादि सभी धातुओं की वृद्धि (बढ़ती) होती है। वृद्धि अवस्था में कई कारणों से जठराग्नि बड़ी तीव्र होती है। जो कुछ भी खाया-पीया जाता है वह शीघ्र पच, रसादि धातु बनकर शरीर का अंग बन जाता है और इसे दृढ़ और पुष्ट बनाता है। जिसकी जठराग्नि मन्द होती है वह वृद्धि अवस्था में भी निर्बल तथा युवावस्था में भी बूढ़ा ही रहता है।

सार यह है—हमारे उदर में एक प्रकार की उष्णता (अग्नि) है जो भोजन को पचाती, पौष्टिक भाग को ग्रहण करती और मल-

भाग को बाहर निकालती है और रसादि धातुओं से मानुष शरीर का निर्माण वा वृद्धि करती है। इस उष्णता (गर्मी) की सबको आवश्यकता है और व्यायाम से सारे ही शरीर में उष्णता आ जाती है। वह नसनाड़ियों के द्वारा भोजन से रस को इस प्रकार खींचती रहती है जिस प्रकार जल को स्पञ्ज (जल शोषक) वा मसि (स्याही) को मसिशोषक (स्याही चूस)। यही उष्णता शरीर में रक्तादि धातुओं का निर्माण और संचार करती है। जिस प्रकार विद्युत् की धारा से बिजली के तार में उत्तेजना (गर्मी) का संचार होता है, उसी प्रकार व्यायाम से सारे शरीर में रक्त उत्तेजित होकर नस-नाड़ियों के द्वारा अत्यन्त तीव्रगति से दौड़ने लगता है, नस-नाड़ियां सब उत्तेजित तथा कार्यशील हो जाती हैं, सम्पूर्ण शरीर में रक्त सञ्चार भली-भांति होता है और यथायोग्य सब अंगों को शक्ति प्रदान करता है। विद्युत् बिना विद्युत्-धारा (current) के सर्वथा निस्सत्व वा शक्तिहीन है, उसी प्रकार रक्त-सञ्चारिणी सब नस-नाड़ियां रक्त-सञ्चार के बिना व्यर्थ हैं। रक्त-सञ्चार बिना रक्त बने कैसे ?

रक्त बनता है रस से और रस बनता है भोजन के पचाने से; भोजन पचता है उष्णता (पेट की गर्मी) से और उष्णता की जननी है व्यायाम। इस उष्णता से रस, रस से रक्तादि बनते हैं। यह रक्त नस-नाड़ियों के द्वारा नियम से सारे देह में परिभ्रमण करता हुआ शक्ति-सञ्चार करता है। व्यायाम से प्रदीप्त हुई जठराग्नि भोजन से पोषक द्रव्यों को ही ग्रहण नहीं करती अपितु इस में यह भी शक्ति है कि यह शरीर से विजातीय (व्यर्थ के) मल-मूत्रादि द्रव्यों को भी बाहर निकाल फेंकती और शरीर को शुद्ध-पवित्र बनाती है। जिस प्रकार मार्जनी (झाड़ू) घर में मार्जन (सफाई) का कार्य करती है, उसी प्रकार यह शरीर की गर्मी अनेक मार्गों द्वारा मल-मूत्रादि कूड़े-कर्कट को बाहर निकाल फेंकती है और यह

उष्णता व्यायाम से शरीर में इतनी अधिक उत्पन्न होती है कि यह स्थूल से स्थूल, सूक्ष्म से सूक्ष्म चिपटे हुए मलों और दोषों को भी गुदा, मूत्रेन्द्रिय, नेत्र, कर्ण, नासिका और रोमकूपादि (मसामों) के द्वारा मल, मूत्र, श्लेष्म, कफ, थूक, लार, पित्त और स्वेद (पसीना) आदि के रूप में शरीर से बाहर निकाल कर ही छोड़ती है। यहां तक कि व्यायाम करने से पसीने के द्वारा अनेक प्रकार के विष भी शरीर से बाहर निकल जाते हैं।

प्रो० राममूर्ति के जीवन की घटना

इस विषय में प्रो० राममूर्ति के जीवन की एक घटना दी जाती है और वह इस प्रकार है कि योरप में इन्हें नीचा दिखाने के लिए कुछ पापियों ने भोजन में धोखे से विष दे दिया। जब इन्हें पता चला तो इन्होंने एक साथ दस-पन्द्रह हजार दण्ड निकाल डाले। सब विष स्वेद (पसीने) के द्वारा बाहर निकल गया और वे बच गये।

व्यायाम करने वाले का शरीर अत्यन्त शुद्ध वा निर्मल और निर्दोष हो जाता है। मल-मूत्रादि ठीक रीति से निकल जाते हैं। कभी मल-बन्ध (कब्ज) नहीं होता। उसे यह चिन्ता नहीं करनी पड़ती कि टट्टी आयेगी वा नहीं। शौच दोनों समय खुलकर आता है। आमाशय वा जठराग्नि को बल देनेवाला सबसे सस्ता और सर्वोत्तम योग (नुस्खा) व्यायाम ही है। व्यायाम करनेवाले को मन्दाग्नि का रोग कभी नहीं होता। वह जो भी पेट में डाल लेता है, सब कुछ शीघ्र ही पचकर शरीर का अंग बन जाता है। उसका खाया-पीया घी, दूध, आदि पौष्टिक भोजन उसके शरीर में ही लगता है, टट्टी में नहीं निकलता। अतः उसकी बल-शक्ति दिन प्रति-दिन बढ़ती ही चली जाती है। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गों की वृद्धि

यथायोग्य होती है। शरीर के अङ्गों को सुडौल, सघन, गठीला और सुन्दर बनाना व्यायाम का प्रथम कार्य है। यदि कोई मनुष्य केवल एक वर्ष निरन्तर नियम पूर्वक किसी भी व्यायाम को करले, तो उसका शरीर सुन्दर और सुदृढ़ बनने लगता है और जो सदैव श्रद्धापूर्वक दोनों समय यथाविधि व्यायाम करते हैं, उनका तो कहना ही क्या। उनके शरीर की सभी मांसपेशियां लोहे की भांति कड़ी और सुदृढ़ हो जाती हैं और सभी नस-नाड़ियां, सम्पूर्ण स्नायु मण्डल और शरीर का प्रत्येक अङ्ग वज्र वा इस्पात (फौलाद) के समान कठोर और सुदृढ़ हो जाता है। चौड़ी उभरी हुई छाती, लम्बी-सुडौल और गठी हुई भुजायें, कसी हुई पिण्डलियां, चढ़ी हुई जंघायें, विशाल मस्तक तथा चमचमाता हुआ रक्तवर्ण (लाल) मुखमण्डल उसके शरीर की शोभा को बढ़ाता है। यथाविधि व्यायाम करने से शरीर का प्रत्येक अङ्ग यथेच्छ वृद्धि को प्राप्त होकर अत्यन्त सुन्दर, सुदृढ़ और सघन बन जाता है। शरीर पर व्यर्थ का मांस वा मेद (चर्बी) चढ़कर उसे ढीला नहीं करने पाता, पेट शरीर से लगा रहता है, बढ़ने नहीं पाता।

व्यायाम की प्रशंसा में ऋषि-महर्षियों का मत

महर्षि धन्वन्तरि जी सुश्रुत में लिखते हैं—

न चास्ति सदृशं तेन किञ्चित्स्थौल्यापकर्षणम्।
न च व्यायामिनं मर्त्यं मर्दयन्त्यरयो भयात्।

(चिकित्सास्थान अध्याय २४ श्लोक ४१)

अर्थ—अधिक स्थूलता को दूर करने के लिए व्यायाम से बढ़कर और कोई औषधि नहीं है, व्यायामी से उसके शत्रु सर्वदा डरते रहते हैं और उसे दुःख नहीं देते।

न चैनं सहसाक्रम्य जरा समधिरोहति ।
स्थिरीभवति मांसं च व्यायामाभिरतस्य च ॥

(सुश्रुत संहिता चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ४२)

अर्थ—व्यायामी मनुष्य पर बुढ़ापा सहसा आक्रमण नहीं करता । व्यायामी पुरुष का शरीर हाड़, मांस सब स्थिर होते हैं ।

व्यायामक्षुण्णगात्रस्य पद्भ्यामुद्वर्त्तितस्य च ।
व्याधयो नोपसर्पन्ति सिंहं क्षुद्रमृगा इव ॥

(सुश्रुत संहिता चिकित्सा अ० २४ श्लोक ४३)

व्यायाम करने से थककर जिसके शरीर पर पसीना आजाता है और पैरों का तैलादि के द्वारा पर्याप्त मर्दन करता है अथवा उबटन आदि से निर्मल करता है उसके पास रोग इस प्रकार नहीं फटकते जिस प्रकार सिंह से डरकर क्षुद्रमृग (निर्बल मृगादि जंगली पशु) पास नहीं फटकते ।

इसी प्रकार का एक श्लोक व्याकरण के प्रसिद्ध ग्रन्थ काशिका में भी आता है—

व्यायामक्षुण्णगात्रस्य पद्भ्यामुद्वर्तितस्य च ।
व्याधयो नोपसर्पन्ति वैनतेयमिवोरगः ॥

(काशिका अध्याय ६ पाद १, सूत्र ६३)

व्यायाम करने से थककर जिसके शरीर में पसीना आजाता है और जो पैरों का तैलादि के द्वारा पर्याप्त मर्दन करता है अथवा उबटन आदि से निर्मल करता है उसके पास रोग इस प्रकार नहीं फटकते जिस प्रकार गरुड़ से डरकर सर्प पास नहीं फटकता ।

वयोरूपगुणैर्हीनमपि कुर्यात्सुदर्शनम् ।
व्यायामं कुर्वतो नित्यं विरुद्धमपि भोजनम् ॥
विदग्धमविदग्धं वा निर्दोषं परिपच्यते ॥

(सुश्रुत संहिता चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ४४-४५)

अर्थ—जो मनुष्य युवावस्था (जवानी), सुन्दरता और वीरता आदि गुणों से रहित है उसको भी व्यायाम सुन्दर बनाता है। व्यायाम करनेवाला मनुष्य गरिष्ठ, जला हुआ अथवा कच्चा किसी भी प्रकार का खराब भोजन क्यों न हो, चाहे उसकी प्रकृति के भी विरुद्ध हो, सबको भली-भांति पचा लेता है और उसको कुछ भी हानि नहीं पहुँचती।

व्यायाम करनेवाले मनुष्य को आप इस प्रकार कहते हुए कभी न सुनेंगे कि मुझे भोजन नहीं पचता वा मल साफ नहीं होता अथवा अपचन रहता है। यह दुर्गति तो व्यायाम न करनेवाले मनुष्यों की ही रहती है। उन्हें कभी शौच खुलकर नहीं आता। अपचन के कारण कभी खुलकर सच्ची भूख नहीं लगती। व्यायाम न करनेवाले लोगों का शरीर प्रायः रोगों का घर हो बना रहता है। उनके सारे जीवन की आय (कमाई) वैद्य, डाक्टरों की ही भेंट चढ़ती है। किन्तु उन्हें स्वास्थ्य और सच्चे सुख के दर्शन जीवन भर कभी भूलकर भी नहीं होते। स्वास्थ्य के बिना कैसा सुख और आनन्द; क्योंकि 'आरोग्यं चापि परमं व्यायामादुपजायते।" आदर्श स्वास्थ्य अथवा परम आरोग्य जिसकी प्राप्ति व्यायाम से ही होती है। वही आनन्द और सौख्य का उद्‌गम है। व्यायाम करने वाले का शरीर केवल स्वस्थ ही नहीं, अपितु अत्यन्त सुन्दर और दर्शनीय भी होता है। व्यायाम से शरीर बड़ा कसा हुआ और सुता हुआ रहता है। उसमें शिथिलता और ढीलापन नाम मात्र भी नहीं रहता। व्यायाम से रंग रोगन निखर आता है, मुख पर क्या सारे शरीर पर लाली, अद्भुत कान्ति और तेज चमचमाता है, बुढापा उसके पास आता हुआ घबराता है, व्यायाम करनेवाले से शत्रु भी भय खाता है। रोग, बुढ़ापा और मोटापे की तो क्या बात, व्यायामी पुरुष मृत्यु को भी चार ठोकरें लगाता है, वह गुणों की खान और

उसका शरीर सुन्दरता का प्रतीक (नमूना) बन जाता है। आहा ! यदि ऐसा युवक लङ्गोट बान्धकर खड़ा हो जाये तो दर्शकों की यही इच्छा रहती है कि इसके सुन्दर शरीर को देखते ही रहें। उसका आदर्श स्वास्थ्य और मनोहर मानुष देह की कमनीयकान्ति उनके मन को मोह लेती है। मोहे क्यों नहीं, जो पौष्टिक भोजन उसने खाया वह पूर्णतया पच गया और जो उसका सार (तत्व) वीर्य बना वह भी व्यायाम के द्वारा पचकर रक्त में मिल गया और शरीर का ही अंग बन गया।

"वीर्यं वै बलम्" वीर्य तो शक्ति और बल का भण्डार है। व्यायाम से इसकी ऊर्ध्वगति हो जाती है और यह ओज के रूप में चमकने लगता है। वीर्य की अधोगति होती ही नहीं और वीर्य के नाश वा पतन की सम्भावना ही नहीं रहती। शरीर में वीर्य की खूब वृद्धि होकर स्थिरता आ जाती है। इसलिए महापुरुषों ने व्यायाम को वीर्यरक्षा का सर्वोत्तम साधन माना है। व्यायामी पुरुष को जागृत वा स्वप्नावस्था में भी किसी प्रकार भी वीर्यनाश का भय नहीं रहता। फिर ऐसे वीर्यवान् मनुष्य का शरीर क्यों नहीं सुन्दर और सुडौल बने, क्यों नहीं उसके पवित्र और परिपुष्ट देह पर मनोहर कान्ति और सुन्दर छवि छाये।

व्यायाम और दुष्ट विचार

व्यायाम प्रेमी के विचार सदैव शुद्ध और पवित्र रहते हैं। वह कुसंग, कुत्सित और कामुकता के दुष्ट विचारों से सर्वथा दूर रहता है। यदि किसी को कुसंस्कार-वश बुरे विचार तंग ही करें और किसी प्रकार भी वश में न आयें तो उसी समय तेज दौड़ आरम्भ कर दे, अथवा कोई भी व्यायाम करने लग जावे, पुनः देखिए कि दुष्ट विचार कैसे पूंछ दबाकर भागते हैं। "आदर्श व्यायामी पुरुष

के सामने दुष्ट विचारों की दुष्टता नहीं चलती।"

कामवासना का वेग कितना भी प्रबल क्यों न हो तत्काल ही दब जायेगा। व्यायाम का स्वाद (चस्का) व्यभिचार की भावना को सर्वथा समूल नष्ट कर देता है। नीच से नीच मनुष्य यदि नियम-पूर्वक व्यायाम करने लग जाए तो वह स्वयं ही नीचता से घृणा करने लगता है। नियमित व्यायाम से आचारहीन व्यभिचारी भी सदाचारी और ब्रह्मचारी बन जाता है। व्यायाम से मनोविकारों की अन्त्येष्टि हो जाती है। मनकी चञ्चलता नष्ट होकर वह वश में आ जाता है। मन सब इन्द्रियों का राजा है, जब मन ही शुद्ध, पवित्र होकर वश में आ जाता है, तो शरीर और इन्द्रियों के सब दोष दूर होकर वे स्वयं शांत और पवित्र हो जाती हैं। आत्मा को शम और दम की शक्तियां प्राप्त होती हैं, व्यायाम से अन्दर और बाहर की शुद्धि (मृजा) और सफाई हो जाती है। वह सर्वथा शुद्ध, पवित्र और देवता बन जाता है। ऐसी अवस्था में व्यायाम करने वाले के लिए वीर्य-रक्षा वा ब्रह्मचर्य पालन वामहस्त का कार्य हो जाता है। और ब्रह्मचर्य पालन में सफल होना मनुष्य के सौभाग्य का उदय होना है। क्योंकि योगिराज महर्षि पतञ्जलि के कथनानुसार "ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः" ब्रह्मचर्य-पालन से अपूर्व बल और शक्ति प्राप्त होती है और निर्बलता, आलस्य, प्रमाद आदि दुर्गुण सब दूर भागते हैं।

ब्रह्मचर्य सब शक्तियों और सद्गुणों का भण्डार है, इसलिए ब्रह्मचारी जब ब्रह्मचर्य-पालन के मुख्य साधन व्यायाम को अपनाता है तब उससे जहां उसे ब्रह्मचर्य-पालन में पूर्ण सफलता मिलती है वहाँ उसके निरन्तर व्यायाम करते रहने से उसका परिश्रम करने का स्वभाव भी बन जाता है। वह कठिन से कठिन कार्य हंसते हंसते कर लेता है। उसमें कार्य करने की अदम्य शक्ति, अपूर्व

उत्साह, और स्फूर्ति आ जाती है। व्यायाम से शरीर हल्का-फुलका और फुर्तीला हो जाता है। व्यायाम में यह एक विचित्रता है कि यह अधिक स्थूल (मोटे) मनुष्य को पतला और पतले को हृष्ट-पुष्ट (मोटा) बनाता है। व्यायाम निर्बलता का, जो मनुष्य को अधिक कामी और विलासी बनाती है, परम शत्रु है। निर्बलता उससे कोसों दूर भागती है। व्यायाम करनेवाला मनुष्य थकना वा थककर श्वास चढ़ना वा हांपना क्या होता है, यह जानता ही नहीं। वह पर्वत के समान स्थिर व दृढ़ रहता है। उसके लिए दुःख नाम की कोई वस्तु ही नहीं होती। वह मृत्यु के साथ भी हास्य करता है। पुनः उसके लिए शीत-उष्ण (सर्दी-गर्मी), भूख-प्यास, सुख-दुःख, हानि-लाभ, मान-अपमान, हर्ष-शोक, जय-पराजय और जीवन-मरण आदि परस्पर विरोधी द्वन्द्वों का सुखपूर्वक सहन करना साधारणसी बात हो जाती है।

उदाहरणरूप में आप अपने प्राचीन योद्धाओं-पुरुषोत्तम राम, योगेश्वर कृष्ण, वीर हनुमान्, ब्रह्मचारी भीष्म आदि तथा आधुनिक महापुरुष महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, धर्मवीर पं० लेखराम, ब्रह्मचारी रामप्रसाद बिस्मिल और कलयुगी भीम प्रो० रामूर्ति तथा ब्रह्मचारी प्रो० माणिकराव जी आदि व्यायामशील व्यक्तियों की जीवनियां पढ़कर देखें तो आपको पता चलेगा कि हमारे इन पुरुषाओं ने संसार में वे आश्चर्यजनक काम किए जिनको आज भी पढ़-पढ़कर पाठक रोमाञ्चित हो जाते हैं।

संसार के सभी महापुरुषों, विद्वानों, वैद्यों और डाक्टरों का यही एक मत है कि मनुष्य के शरीर को सुन्दर, सुदृढ़ बनाने और स्वस्थ रखने में व्यायाम से बढ़कर अन्य कोई साधन नहीं है। स्वास्थ्यप्राप्ति की सब औषधों से बढ़कर परमौषध व्यायाम ही है।

जो इस परमौषध का आश्रय छोड़कर वैद्य, डाक्टरों के पीछे फिरता है वह अपने धन, यौवन और स्वास्थ्य सबसे हाथ धो बैठता है।

महापुरुषों, प्रसिद्ध वैद्यों एवं डाक्टरों की सम्मतियां

पाठकों के लाभार्थ व्यायाम के पक्ष में कुछ महापुरुषों, वैद्य एवं डाक्टरों की सम्मतियां यहां दी जाती हैं।

महर्षि दयानन्द जो इस युग के आयुर्वेद के प्रकाण्ड पंडित, आदर्श ब्रह्मचारी और आदर्श सुधारक थे और सदैव दण्ड, मुग्दर आदि का नित्य नियमित रूप से व्यायाम करके ही भोजन पाते थे, वे राजा की दिनचर्या के विषय में सत्यार्थप्रकाश में यों लिखते हैं—

"प्रात:काल उठ, शौच, सन्ध्या, अग्निहोत्र कर, नाना प्रकार की व्यूह शिक्षा और कवायद करा, शस्त्र और अस्त्रों का कोष तथा वैद्यालय, धन के कोषों को देख नित्यप्रति व्यायामशाला में जा व्यायाम करके मध्याह्न समय भोजन के लिए अन्त:पुर अर्थात् पत्नी आदि के निवास स्थान में प्रवेश करे।" (सत्यार्थप्रकाश षष्ठ समुल्लास)

डाक्टर हालर साहब एक स्थान पर लिखते हैं—

वीर्य वह अमूल्य रत्न है जो बल का भण्डार है। वह रक्त में पुन: मिल जाता है और शरीर में अद्भुत परिवर्तन उत्पन्न करता है। व्यायामी पुरुष अपनी इस वीर्य की शक्ति की दूसरों की अपेक्षा अधिक रक्षा कर सकता है।"

जर्मन का एक प्रोफेसर लिखता है—

"अच्छा हो वह युवक मर जाये जो व्यायाम से अपने शरीर की शक्तियों को पुष्ट नहीं बनाता।"

जर्मन देश को उठाने वाले हर हिलटर "मेरा संघर्ष" नाम की पुस्तक में लिखते हैं—

"अपनी शिक्षापद्धति में सर्वप्रथम स्थान ज्ञानोपार्जन अथवा अक्षर-अभ्यास को नहीं, व्यामाम शिक्षा तथा स्वस्थ शरीर-निर्माण को देना होगा। क्योंकि सर्वमान्य नियम यह है कि स्वस्थ और बलवान् आत्मा स्वस्थ और बलवान् शरीर में ही पाई जाती है।"[1]

राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी जी लिखते हैं—

"व्यायाम स्वास्थ्य के लिये उतना ही आवश्यक है जितना वायु, जल और भोजन। व्यायाम के बिना हमारा मानसिक कार्य भी अधूरा और नीरस रह जाता है। भोजन के समान व्यायाम भी शरीर तथा मस्तिष्क के लिए आवश्यक है। इसके बिना मस्तिष्क भी वैसे ही निर्बल पड़ जाता है जैसे कि शरीर। निर्बल मस्तिष्क एक प्रकार का रोग है। पुष्ट मस्तिष्क का पुष्ट शरीर में होना ही वास्तविक और सच्चा स्वास्थ्य है।

"एक पहलवान वास्तव में तब तक पहलवान नहीं कहा जा सकता है जब तक कि उसका मस्तिष्क भी उसके शरीर की भांति पुष्ट न हो।

"हम में से बहुत से व्यक्ति कठिन मानसिक परिश्रम करते हैं, परन्तु शारीरिक व्यायाम की ओर ध्यान नहीं देते। उनका शरीर मानसिक परिश्रम के कारण निर्बल पड़ जाता है और वे अनेक रोगों के आखेट(शिकार)बन जाते हैं। यहीं तक ही नहीं,बल्कि जब संसार उनसे कुछ उपयोगी कार्यों की आशा करता है तब वे असमय में ही इस संसार से उठ जाते हैं।"

"हम लोग इस बात को नहीं समझ पाते कि शारीरिक व्यायाम के बिना हमारा मानसिक कार्य भी अधूरा और नीरस रह जाता है।"

"आदर्श व्यायाम वह है—जिससे शरीर एवं मस्तिष्क दोनों

को लाभ पहुँचता हो। केवल ऐसा ही व्यायाम मनुष्य को स्वस्थ बना सकता है।"

डॉक्टर सिलवस्टर ग्राहम लिखते हैं—

"व्यायाम से सब अङ्गों में बल, स्फूर्ति आती है। सब अङ्गों में पूर्णता, लचक, वृद्धि, सौन्दर्य, कान्ति और बल उत्पन्न होता है। वास्तव में व्यायाम शरीर के लिए सबसे बढ़कर पुष्टिदायक है।"

मिस्टर सैण्डो विलायत का प्रसिद्ध पहलवान —

अपने बाल्यकाल में रोगी था, उसे कोई अच्छे से अच्छा डॉक्टर भी स्वस्थ नहीं कर सका। अन्त में उसने परमौषध व्यायाम का सहारा लिया। इसी की कृपा से उसकी पहलवानी का संसार में डंका बजा और वह अपने इस वचनानुसार—

"सम्पूर्ण रोगों का इलाज व्यायाम द्वारा किया जा सकता है।" सभी रोगों की चिकित्सा अन्त तक व्यायाम के द्वारा ही करता रहा।

कलयुगी भीम राममूर्ति ने भी जो हाथी को अपनी छाती पर से उतारते थे, अपनी सारी शक्ति का स्रोत ब्रह्मचर्य और व्यायाम को ही बताया है। वह एक स्थान पर लिखते हैं कि "व्यायाम के बिना अधिक काल तक ब्रह्मचारी रहना असम्भव है।"

यूनान का प्रसिद्ध वैद्य अफलातून लिखता है—

"मल को इकट्ठा होने से रोकने के लिए व्यायाम से उत्तम कोई वस्तु नहीं है।"

भारत के प्रसिद्ध वैद्य पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा 'अमृतधारा' लिखते हैं—

"आर्यों के भीतर जब व्यायाम की प्रथा थी तब यहीं बड़े बड़े योद्धा हो चुके हैं। भीम जैसे मनुष्यों का होना भी यहीं सम्भव था,

जो हाथी को उठाकर फेंक सकते थे ।''

वे दूसरे स्थान पर लिखते हैं—

''व्यायाम से बहुत ही लाभ है। रुधिर बहुतसा तो हमारे अङ्गों के भीतर खर्च होता है और हमारे शरीर को दृढ़ करता है। जिसका वीर्य बनकर बाहर निकल जाता था वह शरीर के भीतर ही रहता है। और इससे बढ़कर यह भी लाभ है कि जो वीर्य बन जावे तो व्यायाम से पुनः शरीर के भीतर शोषण होकर शरीर और हड्डियों को दृढ़ करेगा। जिसका निकलने का अवसर नहीं वह व्यर्थ नहीं निकलेगा, वरन् व्यायाम के द्वारा शरीर का आहार बन जायेगा। अतः व्यायाम को कभी नहीं छोड़ना चाहिए अपितु नित्य करना चाहिए।''

पाश्चात्य देश और हम

सभी पश्चिमी देशों में व्यायाय का खूब प्रचार है। वहां सर्वत्र व्यायाम शिक्षा का अङ्ग बन चुका है। वहां के सुधारक व्यायाम के महत्व को भलीभांति समझ चुके हैं। इसलिए वहाँ कोई कठिनाई नहीं। वहां की जनता व्यायाम को अपना अंग बना चुकी है। इस-लिए वहां के लोगों के स्वस्थ्य हम से कहीं अच्छे हैं। क्या कारण है कि इस अभागे भारत में युवक भी व्यायाम नहीं करते और इस जीवनपयोगी वस्तु वीर्य को अपने जीवन का अङ्ग नहीं बनाते ? इसका मुख्य कारण कुशिक्षा का प्रभाव अथवा शिक्षा का अभाव ही है। भारत में माता पिता बालक को उत्पन्न तो कर देते हैं किन्तु वे उसकी शारीरिक वा मानसिक उन्नति का कुछ ध्यान नहीं रखते जो कि उनका मुख्य कर्तव्य कर्म है। यदि वे अपने सम्मुख बालकों को नित्य प्रति व्यायाम करायें तथा अपने बालकों को बाल्यकाल में ही व्यायाम करने का अभ्यासी बनादें, साथ ही

उन्हें व्यायाम का महत्व भी समझा दें तो वे बड़े होने पर व्यायाम कदापि नहीं छोड़ सकते। प्रथम तो बाल्यावस्था में व्यायाम का अभ्यास नहीं कराते, इसलिए युवावस्था में व्यायाम भार दिखाई देता है, बुढ़ापे की तो बात ही क्या कहनी ? उस समय तो उठना बैठना भी भारी हो जाता है। यथार्थ में सारा दोष तो हमारी शिक्षा प्रणाली का ही है। इसमें व्यायाम के लिए कोई स्थान नहीं। हमारे स्कूलों की शिक्षा इतनी व्यर्थ, अरोचक, निकृष्ट और अधूरी है कि इससे किसी प्रकार का भी लाभ नहीं। व्यायाम के नाम पर स्कूल, कालिजों में वालीबाल फुटबाल आदि अंग्रेजी ढंग के खेल खिलाये जाते हैं। उनमें इनेगिने थोड़े ही विद्यार्थी भाग लेते हैं वा ले सकते हैं। इन खेलों से भी विशेष लाभ नहीं, इन में समय और धन का ही नाश होता है। खेल-खेल ही होता है और व्यायाम-व्यायाम ही। क्या हुआ कोई एक-आध विद्यार्थी कभी भूलकर व्यायाम कर लेता हो, नहीं तो प्रायः अधिक विद्यार्थी और शिक्षक ऐसे हैं जो यह समझते हैं कि व्यायाम करना अनपढ़ मूर्ख और नीच लोगों का कार्य है। इसीलिए विद्यार्थी तथा शिक्षित समाज के स्वास्थ्य की अत्यन्त दुर्दशा है। अजीर्णता वा कोष्टबद्धता का रोग प्रायः सबको रहता है। इसके अतिरिक्त वे अन्य अनेक प्रकार के रोग यथा प्रतिश्याय (जुकाम), खांसी, हृदय की धड़कन, छाती में पीड़ा, स्वप्नदोष, प्रमेह आदि से पीड़ित रहते हैं। सदैव इनके स्वास्थ्य में गड़बड़ ही रहती है। अपने विद्यार्थियों की दीन-हीन शारीरिक निर्बल अवस्था को देखकर रोना आता है। १६ और २० वर्ष की वृद्धि अवस्था में जिनके मुखमण्डल सदैव हीरे की भांति चमकने चाहियें थे, आज वे निस्तेज, बलहीन, मनमलिन; लुटे और मुंह पिटे से दिखाई देते हैं। पश्चिमी झूठी सभ्यता की लहर ने हमारे विद्यार्थी समाज को आलसी, शृङ्गार-

प्रिय, भोगी और रोगी बनाकर इनके स्वास्थ्य का सर्वथा सर्वनाश ही कर डाला है। क्योंकि आमाशय, पेट और फुफ्फुस (फेफड़े) के बिगड़ने से ही सब रोग होते हैं और इनके स्वस्थ रखने का एकमात्र उपाय व्यायाम है।

यदि ब्रह्मचारी प्रो० माणिकराव जी के समान, अन्य सुधारक भी व्यायाम का क्रियात्मक प्रचार करें तो देश के शीघ्र ही सुदिन आसकते हैं। महाराष्ट्र वा दक्षिण में जाकर देखें, श्रद्धेय प्रोफेसर जी की कृपा से प्रायः सभी नगरों में व्यायामशाला बन गई हैं। शिक्षित लोगों का झुकाव भी व्यायाम की ओर होने लगा है। उन्हीं के पुरुषार्थ से आज बड़ौदा में ४-५ लाख रु० की व्यायाम-शाला और शस्त्रागार बना हुआ है। इसी प्रकार सारे देश में व्यायाम के प्रचार की आवश्यकता है। सुधार तो तब हो जब हमारी सरकार ऐसा राज्य नियम ही बना दे जिससे सब को अनिवार्य रूप से व्यायाम करना ही पड़े। व्यायाम न करनेवालों को सरकार दण्ड दे और उन्हें सारा समाज घृणा की दृष्टि से देखे।

हमारी शिक्षण संस्थाओं में व्यायाम का समुचित प्रबन्ध हो। अन्य विषयों की भांति इसकी भी परीक्षा हो, इसमें उत्तीर्ण होने वाला ही उत्तीर्ण समझा जावे। देखें, पुनः व्यायाम का प्रचार तथा हमारे स्वास्थ्य का सुधार कैसे न हो। नगर-नगर, ग्राम-ग्राम और देशके प्रत्येक कोने में व्यायामशालायें वा अखाड़े चलाये जावें। स्वस्थ और बलिष्ठ व्यक्तियों को पारितोषिक और सम्मान दिये जावें। जो निर्बल और रोगी हों उन्हें विवाह करने और सन्तान उत्पन्न करने की अनुमति न दी जावे। केवल स्वस्थ और बलिष्ठ युवा स्त्री-पुरुष ही विवाह और सन्तानोत्पत्ति के अधिकारी हैं। जिन की संतान अधिक सुन्दर, स्वस्थ और बलवान् हो, उनको अनेक प्रकार के पारितोषिक वा मासिक वृत्तियां देकर सरकार प्रोत्साहन दे।

निर्बल, रोगी सन्तान पैदा करनेवाले को यथोचित दण्ड दे। तब कहीं इस पतित भारत का भाग्योदय हो सकता है, पुनः खोई हुई प्राचीन गौरव-गरिमा को प्राप्त कर सकता है। क्योंकि व्यायाम तथा शारीरिक श्रम से घृणा करके कभी भी कोई देश नहीं उठ सकता। इसलिए प्रत्येक ब्रह्मचर्य, स्वास्थ्य तथा देश प्रेमी को प्रतिदिन व्यायाम करने का व्रत लेना चाहिए।

व्यायाम का लक्षण

अब तक हम व्यायाम शब्द का प्रयोग करते आरहे हैं, प्रत्येक व्यक्ति इसका थोड़ा बहुत अर्थ जानता भी है, किन्तु इसका वास्तविक अर्थ क्या है यह जानना आवश्यक है। क्योंकि एक वस्तु का वास्तविक लक्षण जानकर ही हम उससे पूर्ण लाभ उठा सकते हैं। चरक संहिता में इसके लक्षण इस प्रकार दिये हैं—

शरीरचेष्टा या चेष्टा स्थैर्यार्था बलवर्धिनी।
देहव्यायामसंख्याता मात्रया तां समाचरेत्॥
(सूत्रस्थान, अध्याय ७ श्लोक ३०)

शरीर की जो चेष्टा बल बढ़ाने के लिए और स्थिरता (दृढ़ता) के लिए की जाती है, उस चेष्टा का नाम शारीरिक व्यायाम है। इस व्यायाम को मात्रापूर्वक नित्य प्रति सेवन करना चाहिए।

व्याख्या—शरीर को बलिष्ठ, कार्यक्षम, सुदृढ़, स्वस्थ, सुन्दर, स्थिर तथा चिरायु वाला बनाने के लिए जो भी शरीर के अङ्गप्रत्यङ्गों से प्रतिदिन नियमपूर्वक चेष्टायें, परिश्रम वा उपाय किये जाते हैं, उनको व्यायाम कहते हैं।

महर्षि धन्वन्तरि ने सुश्रुत में लिखा है—

शरीरायासजननं कर्म व्यायामसंज्ञितम्।
तत्कृत्वा तु सुखं देहं विमृद्नीयात्समन्ततः॥
(चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ३८)

ऐसा कर्म वा क्रिया जिससे शरीर का परिश्रम होता है अथवा शरीर की वृद्धि वा विकास के लिए क्रियाविशेष वा प्रयत्न किया जाता है उसे व्यायाम कहते हैं। व्यायाम करने के पीछे शरीर को सुख देना चाहिए अर्थात् विश्राम देना चाहिए और भलीभांति शरीर के सब अंगों को अथवा मांस-पेशियों का धीरे-धीरे मर्दन करना चाहिए। जिस से शरीर में जो श्रान्ति वा थकावट आती है वह दूर हो जावे और शरीर शीतल होकर अपनी पूर्व की अवस्था में आजावे। क्योंकि व्यायाम करने में मांस पेशियों (पुट्ठों) पर बल पड़ता है वे थककर टूट तक जाते हैं। मर्दन करने से उनकी थकावट दूर होकर पुनः ठीक हो जाते हैं।

आयामो विविधोऽङ्गाना व्यायाम इति कीर्तितः ॥ धनुर्वेद ॥

शरीर के विविध अङ्गों का आयाम अर्थात् फैलाव, विकास अथवा वृद्धि के लिए जो श्रम वा चेष्टा की जाती है उसे व्यायाम कहते हैं।

साधारण व्यायाम—करनेवाले लोग केवल इसी बात का ध्यान रखते हैं कि उनके भुजदंड और जङ्घायें तैय्यार हो जायें और वक्षःस्थल (छाती-सीना) निकल आये वा उभर आये और विशाल हो जाये। पुट्ठे तैय्यार करना वा डौले बनाना उनके व्यायाम का उद्देश्य होता है। इसलिए इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए वे दण्ड, बैठक आदि कठिन से कठिन व्यायाम करते हैं। उनकी इच्छा के अनुसार उनके पुट्ठे (Muscles.) भी तैय्यार हो जाते हैं। उनका शरीर सुन्दर और दर्शनीय हो जाता है। किन्तु उनका स्वास्थ्य इतना व्यायाम करने पर भी अच्छा नहीं बनता। इसलिए व्यायाम तो वही ठीक है कि जिसके करने से शरीर सुन्दर, सुडौल, सुदृढ़ और बलवान् भी हो और साथ ही स्वास्थ्य भी ठीक रहे और मस्तिष्क भी ठीक काम करता हो। उसमें

आलस्य, तन्द्रा और तमोगुण की प्रधानता न हो। शरीर, मन आदि सदा उत्साह से भरे रहें।

व्यायाम मात्रानुसार ही करें

चरक शास्त्र में मात्रा के अनुसार व्यायाम करने पर बड़ा बल दिया है मात्रा से अधिक व्यायाम करने से अनेक हानियां हो जाती हैं। व्यायाम—अपनी शक्ति, बल के अनुसार तथा अपनी शारीरिक अवस्था को विचार कर करना चाहिए। व्यायाम उतना ही करना चाहिए जिससे शरीर अत्यधिक श्रान्त न होने पाये। अज्ञान के कारण वा सामूहिक स्पर्धा (हार-जीत) के रस्साकसी, दौड़, फुटबाल आदि खेलों में व्यायाम शक्ति से बाहर होने की संभावना सदैव रहती है। व्यक्तिगत विचारपूर्वक व्यायाम करने से व्यायाम के अधिक होने का भय नहीं रहता। कभी-कभी कोई व्यायाम की पुस्तक पढ़कर वा व्याख्यान सुनकर प्रथम ही दिन अधिक व्यायाम कर डालता है अथवा अपने से अत्यधिक बलवान् व्यक्ति से मल्लयुद्ध (कुश्ती) करने से अथवा किसी साथी के साथ अधिक व्यायाम करने की स्पर्धा (शर्त) में व्यायाम का अति योग (अत्यधिकता) कर डालता है। जिससे कभी-कभी बड़ी भयंकर हानियां हो जाती हैं।

व्यायाम की मात्रा के विषय में महर्षि धन्वन्तरि सुश्रुत में लिखते हैं—

सर्वेष्वृतुष्वहरहः पुंभिरात्महितैषिभिः।
बलस्यार्धेन कर्त्तव्यो व्यायामो हन्त्यतोऽन्यथा॥

(चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ४६)

अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्यों को प्रतिदिन सभी ऋतुओं में अपने बल से आधा व्यायाम करना चाहिये। अन्यथा

अधिक व्यायाम किया हुआ हानि करता है। यहां तक कि मृत्यु की भी सम्भावना रहती है।

अत्यधिक व्यायाम से हानियां

श्रमः क्लमः क्षयस्तृष्णा रक्तपित्तं प्रतामकः।
अतिव्यायामतः कासो ज्वरश्छर्दिश्च जायते॥

(चरकसंहिता सूत्रस्थान, अध्याय ७ श्लोक ३२)

अति व्यायाम करने से शरीर बिना ही परिश्रम किये थका रहता है। उसमें पीड़ा होती है। मन और इन्द्रियों में ग्लानि सी रहती है। रस, रक्त आदि धातुओं का क्षय अर्थात् नाश होकर मनुष्य निर्बल हो जाता है। यहां तक कि क्षय (तपेदिक) भी हो जाता है। तृष्णारोग (अधिक प्यास लगना), रक्तपित्त (नाक, मुख वा अन्य किसी अङ्ग से) रक्त का बाहर निकलना, प्रतामक-श्वास (दमा), कास (खासी), ज्वर और वमन (उलटी) आदि रोग हो जाते हैं। "अतिव्यायामतो रोगा मानवानां भवन्ति हि।" (चरकसंहिता)।

अर्थात्–अति व्यायाम करनेवाले मनुष्य अनेक रोगों में फंस जाते हैं। जो लोग "अधिकस्याधिकं फलम्" के अनुसार यह समझ कर कि अधिक व्यायाम से अधिक बल बढ़ता है मात्रा से अधिक व्यायाम कर डालते हैं, वे बड़ी भयङ्कर भूल करते हैं और इसीलिए अनेक प्रकार की हानियां उठाते हैं। बिना विचारे अन्धाधुन्ध व्यायाम का परिणाम सदैव हानिकारक ही होता है। अधिक व्यायाम से शरीर दुर्बल, रोगी, भद्दा और कुरूप हो जाता है। बुद्धि और स्मरणशक्ति घट जाती है। मस्तिष्क को बड़ी हानि पहुंचती है। अनियमित और मात्रा से अधिक अच्छी से अच्छी वस्तु का भी उपयोग हानिकारक ही होता है। इसलिए "अति सर्वत्र

वर्जयेत्" अति सर्वत्र वर्जित है। इस विषय में एक सच्ची घटना दी जाती है—

हिन्दू-मुस्लिम दङ्गों के समय में जब अखाड़ों में जाने और व्यायाम करने का प्रचार बढ़ा, तब अपने माता-पिता के उत्साहित करने पर एक युवक ने अखाड़े में जाना आरम्भ किया। थोड़े से दिनों में कई सौ दण्ड-बैठक निकालने लगा। थोड़ा-थोड़ा मल्ल युद्ध (कुश्ती) भी करने लगा। एक दिन अपने से द्विगुण शक्तिवाले युवक से मल्लयुद्ध किया। उसी दिन से उसकी छाती में साधारण सो पीड़ा होने लग गई। उसने इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और पहले की भाँति अखाड़े में जाता रहा। पुष्टिकारक भोजन करने और नियमित व्यायाम करते रहने पर भी उसका शरीर निर्बल होने लगा। भोजन के पश्चात् दोपहर को शरीर उष्ण हो जाया करता और हाथ-पैरों के तलवे हर समय जलने लगे। खांसी भी हो गई। फिर भी अखाड़े में जाने का नियम नहीं छोड़ा। जब शरीर अत्यन्त निर्बल होगया और छाती की पीड़ा तथा खांसी बहुत तङ्ग करने लगी और ज्वर भी हर समय रहने लगा। पुनः वैद्य-डाक्टरों का द्वार खटखटाया। अनेक प्रकार की चिकित्सायें कीं, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। मुख से हर समय रक्त निकलने लगा। ज्वर और छाती की पीड़ा के कारण न रात को नींद आती थी और न दिन में ही एक क्षण आराम से बीतता था। अन्त में यह होनहार युवक व्यायाम के नियमों से अनभिज्ञ होने के कारण अनेक प्रकार के कष्ट सहकर विकराल काल का ग्रास हो गया। आशा है कि इस दुर्घटना से मात्रा से अधिक व्यायाम करने वाले लोग शिक्षा ग्रहण करेंगे।

इसलिए महर्षि पतञ्जलि जी ने चरक शास्त्र में लिखा है—

व्यायामहास्यभाष्याध्वग्राम्यधर्मप्रजागरान् ।
नोचितानपि सेवेत बुद्धिमानतिमात्रया ॥

(सूत्रस्थान, अध्याय ७ श्लोक ३३)

व्यायाम, हास्य (हंसना), भाष्य (बोलना), मार्ग चलना, मैथुन तथा रात्रिजागरण का चाहे अभ्यास भी हो, बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिये कि इनका अधिक मात्रा में सेवन न करे।

एतानेवंविधांश्चान्यान् योऽतिमात्रं निषेवते।
गजः सिंहमिवाकर्षन् सहसा स विनश्यति॥

(चरकसंहिता सूत्रस्थान, अध्याय ७ श्लोक ३४)

इन्हें तथा इस प्रकार से अन्य कार्यों का जो अतिमात्रा में सेवन करता है वह शीघ्र ही रोग एवं मृत्यु का ग्रास होता है। जैसे सिंह हाथी को मारकर पुनः उसे खींचकर दूसरी जगह ले जाना चाहता है अर्थात् मात्रा से अधिक उसे खींचने में शक्ति लगाता है, तो उसका परिणाम यही होता है कि वह मर जाता है।

व्यायाम की मात्रा

अपने बल वा शक्ति से आधा व्यायाम करना चाहिये। महर्षि धन्वन्तरि जी महाराज सुश्रुत में बलार्ध के ये लक्षण लिखते हैं—

हृदिस्थानस्थितो वायुर्यदा वक्त्रं प्रपद्यते।
व्यायामं कुर्वतो जन्तोस्तद्बलार्धं विनिर्दिशेत्॥

(चिकित्सा अ० २४ श्लोक ४७)

हृदय स्थान में ठहरा हुआ वायु जब व्यायाम करनेवाले मनुष्य के कण्ठ तक पहुंच जाये वा मुख में आने लगे अर्थात् फुप्फुस (फेफड़े) के अन्तिम सिरे तक छोटे-छोटे कोष्ठकों में भी जब व्यायाम करते हुए श्वास-प्रश्वास होने लगे, उसे बलार्ध जानना चाहिये।

व्यायाम की अधिकता से बचने के लिए और उचित मात्रा जानने के लिए धन्वन्तरि जी ने बहुत उत्तम विधि बतलाई है।

वैसे तो एक मनुष्य दूसरे की अपेक्षा बहुत अधिक व्यायाम कर सकता है इसलिए सबका बलार्ध पृथक्-पृथक् है। अब भी सम्भव है कोई बलार्ध मात्रा को न समझ सके। अतः इस विषय को और अधिक स्पष्ट किया जाता है।

व्यायाम करते समय मुख को बन्द रखना चाहिये और श्वास सदैव नासिका से ही लेना चाहिये। जब व्यायाम करते-करते श्वास चढ़ जायें और मुख खोलने के लिए विवश होना पड़े तो समझ लेना चाहिये कि पर्याप्त व्यायाम हो चुका। स्वस्थ की दशा में यह सर्वथा ठीक है, किन्तु नासा रोग या कफ रोग के कारण नासिका बन्द हो तो यह परीक्षा ठीक नहीं। तब दूसरी विधि का आश्रय लेना पड़ता है। महर्षि धन्वन्तरि जी ने दूसरी विधि भी लिखी है-

कक्षाललाटनासासु हस्तपादादिसन्धिषु ।
प्रस्वेदान्मुखशोषाच्च बलार्धं तद्विनिर्दिशेत् ॥

(सुश्रुतसंहिता चिकित्सा अ० २४ श्लोक ४७)

जब कक्षा (बगल), मस्तक, नासिका तथा हाथ-पैर आदि की सन्धियों (जोड़) में स्वेद (पसीना) आने लगे और मुख सूखने लगे तो बलार्ध समझकर व्यायाम बन्द कर देना चाहिए।

बलार्ध का एक आशय यह भी है— कि जिस मनुष्य में १०० दण्ड निकालने की शक्ति है, वह ५० दण्ड निकाले। इसे बलार्ध समझना चाहिए।

अधिक व्यायाम से बचने के लिए एक बात का सदैव ध्यान रखें, व्यायाम करते समय आपका मुख न बिगड़ने पावे। अपनी शक्ति से अधिक व्यायाम करने से मुख की आकृति बिगड़ जाती है। इसलिए अपने बल से अधिक व्यायाम करने से बचने का यह एक अच्छा ढंग है।

उपर्युक्त बातों को पढ़कर कोई सज्जन उलटी शिक्षा ग्रहण न

करे और व्यायाम की मात्रा सर्वथा न घटा दे। जहां अधिक व्यायाम करने से हानि होती है वहाँ थोड़ा व्यायाम करने से कोई लाभ भी नहीं होता। जसे शहरों में लोग खेलने की क्लबें बनाते हैं, वहां जाकर बाबू लोग थोड़ी बहुत देर खेल आते हैं और इसी को व्यायाम समझते हैं। ऐसे व्यायामों से कोई लाभ नहीं होता। जिस प्रकार अधिक भोजन से हानि और रोग उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार बहुत थोड़े भोजन से भी मनुष्य निर्बल हो जाता है और उसका शरीर कदापि हृष्ट-पुष्ट नहीं हो सकता। जिस प्रकार उचित मात्रा में किया हुआ भोजन शरीर को स्वस्थ और बलिष्ठ बनाता है, इसी प्रकार उचित मात्रा में किया हुआ व्यायाम भी हमारे शरीर को सुदृढ़, स्वस्थ और बलवान् बनाता है।

प्रारम्भ में ही अधिक व्यायाम नहीं करना चाहिये। आरम्भ में थोड़ा व्यायाम करें, पुनः शनैः-शनैः अभ्यास बढ़ायें जैसे—कोई व्यक्ति पहले दिन १० दण्ड करता है तो उसे अगले दिन एक दण्ड बढ़ा देना चाहिए, अथवा सप्ताह में १ दण्ड बढ़ाने के नियम से वह वर्ष भर में ६० और दो वर्ष में ११० दण्ड प्रतिदिन करने का अभ्यास कर सकता है। इसी प्रकार अपने बलाबल को विचार कर तथा भोजन के अनुसार ही व्यायाम को शनैः-शनैः बढ़ाना चाहिये। बहुत बार व्यायाम के नये प्रेमी नवयुवक इस विषय में बड़ी शीघ्रता करते हैं। प्रथम तो पहिले ही दिन वे अपनी शक्ति से अधिक दण्ड आदि व्यायाम करते हैं। फिर उत्साह में ५-५ वा १०-१० दण्ड प्रतिदिन बढ़ाने का यत्न करते हैं। उनका यह खेल २-४ दिन तो चल जाता है, किन्तु पीछे उनका यह बढ़ाने का नियम जब टूट जाता है और मन भर जाता है, तो पहले जैसी रुचि और उत्साह नहीं रहता और पुनः वे व्यायाम को छोड़ बैठते हैं। इसलिये थोड़े व्यायाम से आरम्भ करके शनैः-शनैः बढ़ाना हितकर

है। इस बात का सदा ध्यान रखें कि चाहे दण्ड, बैठक आदि कोई भी व्यायाम करें, किन्तु एक बार में इतना ही करें जितना सुख-पूर्वक आप कर सकते हैं। आपका श्वास नहीं फूलना चाहिये। श्वास फूलने या उखड़ने अथवा नासिका की जड़ सूखने के पश्चात् भी व्यायाम करते रहने से शरीर के साथ बड़ा अन्याय होता है और अनेक प्रकार की हानियां होती हैं, जिनको पहले बताया जा चुका है।

व्यायाम की मात्रा के विषय में विदेश के प्रसिद्ध पहलवान मिस्टर सैंडो लिखते हैं—

"व्यायाम से यदि बल प्राप्त करना चाहते हो तो व्यायाम थोड़ा बलानुसार करो, परन्तु नियमानुकूल करो। यह नहीं चाहिये कि एक दिन तो १०० दण्ड निकाल लिये और अगले दिन एक भी नहीं।"

शेख बू अली सीना का कथन है—

"यदि व्यायाम समतापूर्वक यथेच्छा और यथोचित समय पर किया जाये तो सर्वोपायों से लाभदायक हो सकता है, परन्तु जिस व्यायाम को समतापूर्वक न किया जाये वह दुर्बलता तथा शक्ति-हीनता का कारण होता है।"

इसी विषय में प्रोफेसर राममूर्ति जी का आदेश है—

"व्यायाम का अभ्यास क्रमशः करना चाहिए, एकदम बढ़ा देना उचित नहीं। जो व्यायाम किया जाये, धीरे-धीरे अंगों पर पूरा जोर देकर किया जाये।"

व्यायाम करने से पुट्ठों (मांस पेशियों) में पीड़ा उत्पन्न होती है। उन में पीड़ा के साथ-साथ एक प्रकार का तनाव वा अकड़ाव-सा होता है। बहुत से लोग उस पीड़ा आदि के कारण को न समझकर व्यायाम करना बन्द कर देते हैं। वास्तव में इस प्रकार व्यायाम से

उत्पन्न हुई पुट्ठों की पीड़ा पुट्ठों में नये बल प्राप्त करने की इच्छा या भूख को प्रकट करती है अतः इस पीड़ा से डरकर व्यायाम छोड़ देना भारी भूल है। एक-दो सप्ताह निरन्तर व्यायाम करते रहने से पीड़ा स्वयं शांत हो जाती है। यह व्यायाम से ही हुई है और व्यायाम से ही चली जाती है। अतः इसकी चिन्ता छोड़कर नित्य व्यायाम करते रहना चाहिये।

नियमित व्यायाम

जो व्यायाम नियमों को ध्यान में रखकर किया जाता है, उसे नियमित व्यायाम कहते हैं।

जो व्यायाम प्रति-दिन अपनी शक्ति, मात्रा, भोजन, आयु आदि को ध्यान में रखकर नियत समय और उचित स्थान पर श्रद्धापूर्वक किया जाता है उससे पूरा-पूरा लाभ होता है। कोई व्यक्ति यदि एक दिन व्यायाम करके दो दिन व्यायाम नहीं करता अथवा दो सप्ताह करके पुनः एक सप्ताह के लिए छोड़ देता है और एक दिन प्रातः ६ बजे, दूसरे दिन ५ बजे और तीसरे दिन ७ बजे करता है और किसी दिन अधिक और किसी दिन न्यून व्यायाम करता है उसे इस प्रकार व्यायाम करने से यथेष्ट लाभ नहीं होता, किन्तु लाभ के स्थान पर हानि ही होती है।

मिस्टर सेंडो पहलवान लिखते हैं—

"सड़क कूटनेवाले सारा दिन (सड़कें कूटते-कूटते। मानो व्यायाम ही करते रहते हैं। परन्तु वह एक दूसरे की अपेक्षा ऐसे हृष्ट-पुष्ट नहीं होते, जैसा कि होना चाहिये। कारण यह है कि उनका सड़क का कूटना इस अभिप्राय से नहीं होता, कि वह बल और स्वास्थ्य प्राप्त कर रहे हैं। किन्तु वे तो उदर-पूर्ति के लिए यत्न कर रहे हैं। इस पर भी वे व्यायाम न करनेवालों से स्वस्थ

और बलवान् होते हैं। क्योंकि व्यायाम (परिश्रम) अपना गुण तो अवश्य करता है। यदि इसके साथ मन की शक्ति भी होती तो बस फिर क्या था।"

सड़क कूटनेवालों के समान लोहार भी दिन भर हथौड़ा चलाकर परिश्रम करता है, किन्तु उसके भुजदण्ड और पुट्ठे नियमित व्यायाम करनेवाले पहलवान के समान सुदृढ़ और पुष्ट नहीं होते और न ही उसका शरीर वैसा स्वस्थ और बलयुक्त होता है। आलसी मनुष्यों की अपेक्षा तो लोहार आदि का शरीर स्वस्थ और दृढ़ ही होता है। क्योंकि परिश्रम वा कार्य का फल तो उसे मिलता ही है। किन्तु व्यायाम करनेवाला पहलवान नियम से प्रतिदिन सायं-प्रातः कुछ काल ही व्यायाम करता है। यह नियमित व्यायाभ उसके शरीर को सुडौल, सुन्दर, स्वस्थ बलयुक्त बना देता है। क्योंकि व्यायाम-व्यायाम ही है और कार्य-कार्य ही है। लोहार वा सड़क कूटनेवाले के कार्य को अनियमित व्यायाम कहा जा सकता है। क्योंकि वह बल और स्वास्थ्य वृद्धि के लिये नहीं किया जाता और न ही उसमें स्वास्थ्य के किसी नियम का ध्यान रखा जाता है।

व्यायाम और इच्छा शक्ति

व्यायाम से पूरा लाभ उठाने के लिए पूर्ण मन लगाकर व्यायाम करना चाहिये। व्यायाम करते समय अपनी इच्छा को पूर्णतया शरीर के अङ्गों की ओर लगाना चाहिये। जिस मांस-पेशी वा शरीर के अङ्ग को जितना दृढ़ और स्वस्थ करना चाहें, उस अङ्ग वा पेशी में व्यायाम करते समय उतनी ही इच्छा को प्रविष्ट कर दें वा लगायें। इच्छारहित व्यायाम जो भार समझकर किया जाता है, उससे कोई लाभ नहीं होता। व्यायाम के नाम से घबराना नहीं चाहिये, इसे मन लगाकर और आनन्द ले लेकर करना चाहिये।

प्रोफेसर राममूर्ति लिखते हैं—

"व्यायाम करते समय मन को स्थिर रखना चाहिये और शरीर के प्रत्येक भाग पर व्यायाम के लाभ का चिन्तन करते रहें।"

सैण्डो पहलवान भी इस विषय में लिखते हैं—

"एक मनुष्य जो हृदय के साथ व्यायाम करता है, उसका थोड़ा बहुत व्यायाम भी उसको अधिक स्वस्थ और सुदृढ़ बनाता है, उस व्यक्ति की अपेक्षा जो व्यायाम तो बहुत करता है, किन्तु मन से नहीं करता। जिस अङ्ग का व्यायाम करें, मन भी साथ ही साथ यह अनुभव करे कि अमुक अङ्ग बल प्राप्त कर रहा है।

इस प्रकार व्यायाम करने से मन की दृढ़ता प्रबल भावना के कारण मनुष्य के अङ्ग-प्रत्यंग बड़े शीघ्र ही सुन्दर, सुदृढ़ स्वस्थ और सुडौल बन जाते हैं। अतः व्यायाम करने के समय विशेषतया ब्रह्मचारी को एकाग्रचित्त होकर यह दृढ़ भावना रखनी चाहिये कि मेरी नस-नस और अङ्ग-प्रत्यंग में बल, तेज, वीर्य, वीरता, आरोग्य, स्वास्थ्य, सुन्दरता, स्थिरता और पराक्रम शक्ति आदि सब सद्गुण प्रवेश कर रहे हैं। मेरा शरीर उन्नत, हृष्ट--पुष्ट और बलिष्ठ हो रहा है। इस संकल्प का असाधारण प्रभाव पड़ता है, जिसको मनुष्य अनुभव से ही जान सकता है। जो लोग बहुत शीघ्रता और द्रुतगति से व्यायाम करते हैं और व्यायाम में मन की शक्ति का प्रयोग नहीं करते, वे बहुत थोड़ा लाभ उठाते हैं। अतः व्यर्थ का भार (बेगार) समझकर व्यायाम करना केवल मूर्खता ही है। इसलिये शनैः शनै सावधानी से विधिपूर्वक मन लगाकर व्यायाम करना चाहिये। प्रोफेसर राममूर्ति तथा सैण्डो ने इसी कार्य के लिए बड़े शीशे का प्रयोग करना लिखा है। वे लिखते हैं—

"व्यायाम करते समय सामने बड़ा शीशा रखकर उसमें शरीर के अङ्गों को ध्यानपूर्वक देखते हुए व्यायाम करने से शरीर

सुन्दर और सुडौल बन जाता है।"

व्यायाम का समय

प्रत्येक व्यक्ति को सन्ध्या के समान प्रातः और सायं दोनों ही समय व्यायाम करना चाहिये। ये दोनों ही समय अच्छे हैं, अपेक्षाकृत प्रातःकाल का समय अधिक अच्छा है और ब्रह्मचर्य की साधना के लिए अच्छी लगन के ब्रह्मचारी रात को सोने के समय भी कठोर थकाने वाला व्यायाम करके सोते हैं। इससे स्वप्नरहित गाढ़ निद्रा आती है और स्वप्नदोष आदि के द्वारा वीर्य नाश नहीं होता। सायंकाल वा सोते समय जब भी व्यायाम करें, यह अवश्य ध्यान रक्खें कि खाया हुआ भोजन पच चुका हो और पेट हल्का हो अर्थात् मल-मूत्र त्याग के पश्चात् ही व्यायाम करना चाहिये। ग्रीष्म-काल में तो प्रातःकाल सूर्योदय से पहले ही निबट जाना चाहिये। गर्मी की ऋतु में सूर्योदय के पश्चात् तथा सायंकाल कठोर और बहुत अधिक व्यायाम नहीं करना चाहिये। प्रातःकाल तो सदैव स्फूर्ति, उत्साह उत्पन्न करनेवाला हल्का व्यायाम दौड़, आसन आदि करना चाहिये। क्योंकि प्रातःकाल बहुत अधिक और कठोर व्यायाम करने से श्रम (थकावट) के कारण आलस्य, तन्द्रा वा निद्रा तंग करती वा सताती है, जिससे दिन के कार्यों में बाधा पड़ती है। व्यायाम सदैव स्नान से पूर्व करना ही अच्छा रहता है, किन्तु व्यायाम के पीछे कुछ देर, ठहरकर शरीर को ठण्डा करके स्नान करना चाहिये। व्यायाम करने से जब शरीर उष्ण हो और स्वेद (पसीना) आया हुआ हो तो उसी समय स्नान करने से हानि होने की सम्भावना है। किसी विशेष अवस्था वा शीतकाल में स्नान के पीछे भी व्यायाम किया जा सकता है। यदि स्नान के पीछे व्यायाम करना हो तो सन्ध्या से निबटकर ही करना चाहिये। वैसे स्नान के पश्चात् व्यायाम करने से आलस्य रहता है और व्यायाम

के पश्चात् स्नान करने से शरीर में स्फूर्ति, स्वच्छता और सुन्दरता आती है तथा व्यायाम का श्रम (थकावट) भी दूर हो जाता है और जो व्यायाम के द्वारा शरीर के रोमकूपों से दूषित मल निकला करता है, वह स्नान के से धुलकर शरीर शुद्ध और पवित्र हो जाता है। इसलिए स्नान से पूर्व ही व्यायाम करना हितकर है। शीत-काल वा वसन्त ऋतु में साधारण लोगों के लिए भी और अच्छा पुष्टिकारक भोजन करने वालों के लिए सदैव ही व्यायाम लाभ-दायक है।

महर्षि धन्वतरि महाराज लिखते हैं—

व्यायामो हि सदा पथ्यो बलिनां स्निग्धभोजिनाम्।
स च शीते वसन्ते च तेषां पथ्यतमः स्मृतः ॥

(सुश्रुतसंहिता चिकित्सा अ० २४ श्लोक ४५)

जो मनुष्य बलवान् हैं और जिनको घी, दूध, बादाम आदि स्निग्ध, पुष्टिकारक पदार्थ पर्याप्त मात्रा में खाने को मिलते हैं, ऐसे लोगों के लिए तो व्यायाम सदैव ही लाभदायक है। उनके लिए सदा आनन्द ही आनन्द है। किन्तु वसन्त और शीत-ऋतु व्यायाम करने के विशेष ऋतु हैं। इन ऋतुओं में व्यायाम करना अत्यन्त लाभदायक माना गया है।

ऋषियों की इस आज्ञा के अनुसार व्यायाम के पश्चात् स्निग्ध बलवर्द्धक पदार्थ अवश्य खाने चाहियें। जिन लोगों को व्यायाम के पश्चात् पुष्टिकारक भोजन खाने को नहीं मिलता, उन्हें अधिक व्यायाम न करके थोड़ा व्यायाम करना चाहिये; नहीं तो शरीर क्षीण होने लगता है। आसनों के व्यायाम में पौष्टिक भोजन के खाने की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी दूसरे ढंग के कठोर व्यायामों में है। ऐसे लोगों को अखाड़े में जाकर व्यर्थ में सूखी हड्डियां नहीं रगड़वानी चाहियें।
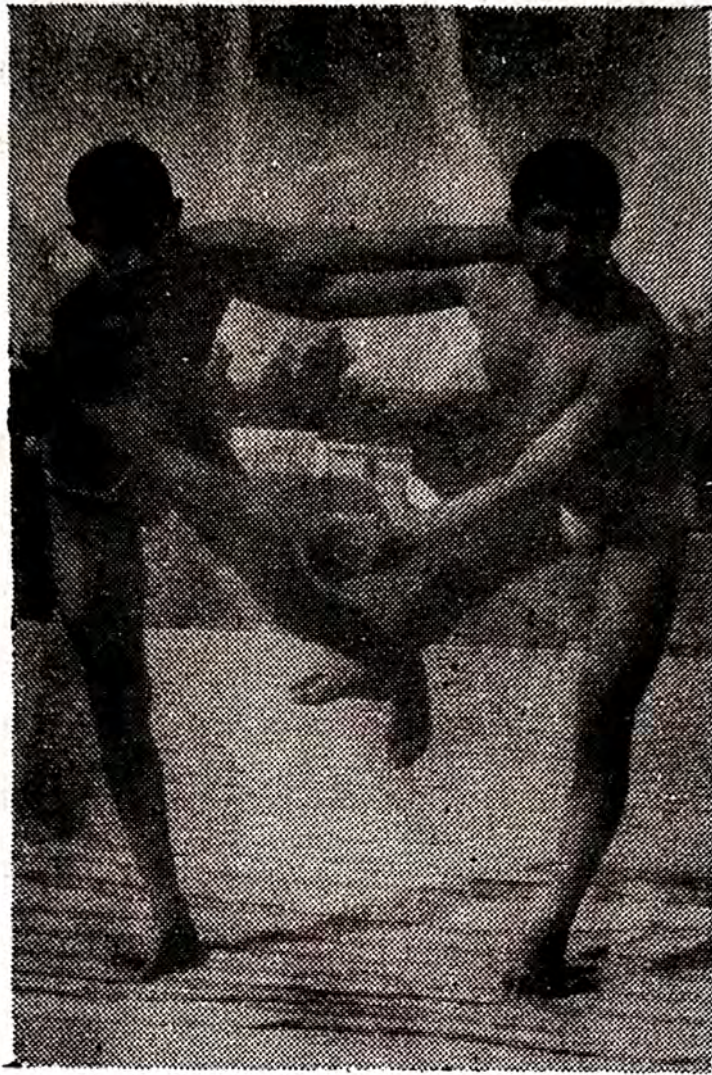
मल्लयुद्ध, मुलतानी दाव

व्यायाम करनेवाले का भोजन

गोदुग्ध अथवा उससे बने दही आदि पदार्थ, बादाम इत्यादि वा कोई अन्य सात्विक पदार्थ प्रातःकाल व्यायाम के पश्चात् खा लेना चाहिये। क्योंकि व्यायाम के पीछे भूख लगा करती है। खाली पेट रहना अच्छा नहीं। भूखा रहने से हानि होती है।

ब्रह्मचारी रामप्रसाद 'बिस्मिल' अपनी आत्मकथा में लिखते हैं—"विद्यार्थी प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त हो व्यायाम करें और सदैव कुएं के ताजे जल से स्नान करें। स्नान से निवृत्त हो यथा विश्वास परमात्मा का ध्यान करें। उपासना के पश्चात् थोड़ासा

जलपान (प्रातराश) करें। कोई फल, शुष्क मेवा, दुग्ध अथवा सबसे उत्तम यह है, कि गेहूं का दलिया रंधवाकर यथारुचि मीठा या नमक डालकर (वा वैसे ही) खावें। फिर अध्ययन करें।"

किन्तु यह ध्यान रखें कि व्यायाम की उष्णता दूर हो जाने पर जब शरीर सर्वथा शीतल (ठण्डा) हो जाये, तभी कुछ थोड़ासा खाना चाहिये। अधिक पेट भरकर खाना भी उस समय अच्छा नहीं। व्यायाम के पश्चात् तत्काल खाना भी बहुत हानि पहुँचाता है। इसलिए कुछ ठहरकर खाना चाहिये। व्यायामी मनुष्य का भोजन सदैव नियत समय पर सात्विक, सरल (सादा), पौष्टिक; शीघ्र पचनेवाला (हलका) और अल्पमात्रा में होना चाहिये। यह समझकर कि मेरी जठराग्नि व्यायाम के कारण तीव्र और प्रदीप्त है, मैं अधिक भोजन पचा सकता हूं, व्यायामी मनुष्य को अधिक भोजन नहीं ठूंस लेना चाहिये और मांसादि अभक्ष्य, गांजा भांग शराब आदि मादक द्रव्य, मिर्च खटाई आदि चटपटे हानि-कारक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये। कुछ लोग तो घृत दुग्ध आदि पुष्टिकारक पदार्थ खाकर ही व्यायाम करने लग जाते हैं। कुछ लोग साथ-साथ खाते भी जाते हैं और व्यायाम भी करते जाते हैं। ऐसे लोगों का यही विचार है कि खा-पीकर अथवा खाते-खाते व्यायाम करने से खाया-पीया सब पच जाता है और शक्ति बढ़ती है। यह उनकी बड़ी भयंकर भूल है। इस प्रकार करने से बड़ी हानि होती है। ऐसे लोग स्वास्थ्य के नियमों से अपरिचित और महामूढ़ होते हैं। ब्रह्मचारी अथवा किसी भी स्वास्थ्य-प्रेमी को ऐसे मूर्खों का अन्धानुकरण नहीं करना चाहिये।

व्यायाम करके उसी समय बैठना, लेटना, सो जाना वा खड़े रहना हानिकारक है। जब तक शरीर और श्वास अपनी पहली स्वाभाविक अवस्था में न आजायें और शरीर की उष्णता

न्यून न हो जाये, तब तक शरीर के अवयवों पर हाथ फेरते हुए शनैः-शनैः मन्दगति से टहलते रहना चाहिये और जो व्यायाम से आये हुए स्वेद हों उन्हें तत्काल पोंछ डालना चाहिये। जब तक पसीने सूख न जायें और शरीर ठण्डा न हो, तब तक वेग से चलने वाले वायु से भी शरीर को बचाना चाहिये। व्यायाम करके तत्काल ही लघुशङ्का (मूत्र-त्याग) करना लाभदायक और आवश्यक है। इससे शरीर की व्यर्थ की उष्णता निकल जाती है, मूत्राशय के रोग नहीं होते, शरीर और मन दोनों शान्त होते हैं।

आरम्भ आरम्भ में व्यायाम के पश्चात् प्यास लगा करती है। जो व्यायाम से होनेवाले लाभ को प्रकट करती है। कोई-कोई मूर्ख इस प्यास को बुझाने के लिए तत्काल ही जल, शर्बत आदि कोई पदार्थ पी लेते हैं, जो अत्यन्त हानिकारक हैं। क्योंकि व्यायाम से जो लाभ होता है, ऐसे लोग जल पीकर उसे समाप्त कर देते हैं। व्यायाम के पश्चात् जल, शर्बत आदि कोई पदार्थ नहीं पीना चाहिये। यदि पीना ही हो और प्रभु किसी को दें, तो गाय का धारोष्ण दूध अथवा बादाम आदि रगड़ कर पीने चाहिय। किन्तु ये भी शरीर के शीतल होने पर ही पीने चाहियें। इनके पीने से जहां प्यास और भूख दोनों शान्त होती हैं, वहां शरीर को बल और शक्ति भी मिलती है।

भोजन करने के पश्चात् न्यून से न्यून ४ घण्टा पीछे व्यायाम करना चाहिये और व्यायाम करने से १ घण्टा पीछे भोजन करना चाहिये।

किन-किन को व्यायाम न करना चाहिये ?

चरक शास्त्र में लिखा है—

क्रोधशोकभयायासैः क्लान्ता ये चापि मानवाः ।
ते वर्जयेयुर्व्यायामं क्षुधितास्तृषिताश्च ये ।।

(सूत्रस्थान अ० ७)

अर्थ-ज्वर आदि रोगों में, क्रोध में, शोक में, भय की अवस्था में और बहुत भूख और प्यास लगने पर व्यायाम नहीं करना चाहिये ।

इसी प्रकार जिस समय पेट बहुत भरा हुआ अथवा बहुत क्षुधा (भूख) हो, उस समय भी व्यायाम करना वर्जित है ।

व्यायाम समय के वस्त्र

व्यायाम के समय का सबसे अच्छा वस्त्र (पोशाक) लङ्गोट ही है । वैसे तो व्यायाम करते समय लोग लङ्गोट के अतिरिक्त रूमाली, कच्छ, जांघिया, बनियान, धोती, पाजामा, पैंट तथा और भी अन्य अंग्रेजी ढंग के वस्त्र पहनते हैं । किन्तु बनियान, धोती, पाजामा, पतलून, आदि पहनकर व्यायाम करना तो व्यायाम के साथ हास्य ही करना है । यदि ऐसे लोग रजाई ओढ़कर बिस्तर पर ही पड़े रहें तो व्यायाम की दुर्गति न हो । व्यायाम करने के समय शरीर खुला हुआ होना चाहिये और व्यायाम का वस्त्र शरीर में बंधा हुआ और सटा हुआ अर्थात् चुस्त भी हो, किन्तु अधिक खिचा हुआ अर्थात् रक्त में किसी प्रकार की बाधा डालने वाला न हो । जैसे—पहलवानी जांघिया मल्लयुद्ध (कुश्ती) के लिए तो अच्छा रहता है, किन्तु इसे पहनकर व्यायाम करने में कठिनाई और कष्ट होता है । इसी प्रकार ढीले-ढाले कच्छे वा निकर भी व्यायाम के लिए उपयुक्त नहीं । इनके पहनने से व्यायाम के समय उचित स्फूर्ति और उत्साह नहीं होता । लङ्गोट को भी बहुत खींच कर नहीं बांधना चाहिये । लङ्गोट को कटि (कमर) में कसकर बांधने से बहुत हानि होती है । क्योंकि व्यायाम करते समय सारे

शरीर में शिर से पग तक रक्त शीघ्रतापूर्वक दौड़ने लगता है। यदि उस समय कटि में लंगोट बहुत कसकर बंधा हुआ है तो वह रक्त की तीव्र गति को रोक देता है और रक्त की गति में बाधा पड़ने से स्वास्थ्य भी बिगड़ता और आयु भी घटती है। लंगोट वा कोई अन्य वस्त्र जो बहुत कसकर बाँधा जाता है, व्यायाम के समय हानि करता है। इसलिए लंगोट न बहुत ही ढीला और न ही बहुत खींच वा कसकर बांधना चाहिए और व्यायाम के पश्चात् लंगोट को तत्काल नहीं खोल देना चाहिए। ब्रह्मचारी को तो लंगोट वा कौपीन के बिना क्षणभर भी नहीं रहना चाहिए। एक विशेष बात यह है कि प्रायः भारत में व्यायाम करनेवालों के वस्त्र बहुत ही मलिन (गन्दे) रहा करते हैं। उनके वस्त्रों में से दुर्गन्ध आने लगती है, जो अत्यन्त ही हानिकारक है। इससे अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है। इसलिए वस्त्रों को शीघ्र-शीघ्र साबुन आदि से धो डालना चाहिए और सदैव शुद्ध ही रखना चाहिए।

व्यायाम का स्थान

व्यायाम करने का स्थान स्वच्छ, पवित्र, स्वास्थ्यप्रद और खुला हुआ हो। वायु बिना रोक-टोक के भली-भांति आता जाता हो। वहां का वायु ताजा और शीतल हो, उस स्थान पर अथवा इधर-उधर कहीं निकट गलने सड़ने वाली वस्तुयें न हों, किसी प्रकार की दुर्गन्ध न आती हो, वहां की शुद्धि (सफाई) भी भली-भांति रखनी चाहिए। दुर्गन्धयुक्त स्थानों में कभी भूलकर भी व्यायाम नहीं करना चाहिए। ग्राम वा नगर से बाहर जंगलों, क्षेत्रों और उद्यान वाटिकाओं (बाग-बगीचे) का वायु और स्थान अधिक स्वच्छ और पवित्र होता है। किसी बड़ी नदी, जलाशय और तडाग का तट भी अधिक स्वास्थ्यप्रद होने से व्यायाम के लिए

तथा आसनों के सर्वश्रेष्ठ व्यायाम सम्मिलित हैं। इसी प्रकार और भी अनेक व्यायाम व्यक्तिगत और सांघिक प्रचलित हैं। दूसरे पाश्चात्य ढग के विदेशी व्यायाम वा खेल फुटबाल, बालीबाल, क्रिकेट, हाकी, टेनिस, बैडमिन्टन, सिंगलबार, डबलबार, मुक्काबाजी (Boxing) और प्रोफेसर सैंडो के विशेष व्यायाम डम्बल और भार उठाना (Weight lifting) इत्यादि अनेक प्रकार के व्यायाम प्रचलित हैं।

कौनसा व्यायाम करें ?

व्यायाम करनेवालों के सम्मुख एक समस्या खड़ी हो जाती है, कि वे अपने लिए कौनसा व्यायाम चुनें। महर्षि धनवन्तरि जी इसका उत्तर देते हैं—

> वयोबलशरीराणि देशकालाशनानि च।
> समीक्ष्य कुर्याद् व्यायाममन्यथा रोगमाप्नुयात्॥
> (सुश्रुत संहिता चिकित्सा. अ. २४ श्लोक ४८)

प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह अपनी आयु, बल वा शक्ति शरीर, प्रकृति, देश वा स्थान, काल वा ऋतु और भोजन के अनुसार भलीभांति विचारकर उचित व्यायाम करे। जो उपरोक्त बातों को बिना विचारे व्यायाम करता है, वह अनेक प्रकार के रोगों में फंस जाता है।

क्योंकि व्यायाम का उद्देश्य मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा को सुन्दर, स्वस्थ, सुडौल, बलवान्, पवित्र और शक्तिशाली बनाना है। अतः जिस व्यायाम से मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सभी प्रकार की उन्नति हो, यथार्थ में उसी को व्यायाम कह सकते हैं और ऐसे सर्वगुणसम्पन्न व्यायाम हमारे प्राचीन पुरुषाओं के बहुत लम्बे अनुभव के पश्चात् प्रचलित किए

हुए भारतीय देशी ढंग के व्यायाम ही हैं, जो हमें परम्परागत प्राप्त हैं।

महर्षि धन्वन्तरि जी ने आयु, अवस्था आदि को विचारकर व्यायाम करने का आदेश दिया है। इसलिए सर्वप्रथम अपने शरीर की परीक्षा करके यह देखना चाहिए, कि मेरा कौनसा अंग निर्बल है। जैसे—किसी का आमाशय (पेट) खराब है। भोजन ठीक नहीं पचता और पाचनशक्ति बिगड़ी हुई है, तो उसे अन्य अंगों के व्यायाम के साथ पेट के व्यायाम पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इस प्रकार नियमित व्यायाम करने से उसका पेट बिना किसी औषध के ठीक हो जाएगा। जो व्यायामशील होकर भी वैद्यों और डाक्टरों के पास जाता है, उसका व्यायाम करना व्यर्थ ही है। क्यों कि व्यायाम करनेवाले को रोग नहीं हो सकते। यदि किसी भूल से हो भी जाए, तो व्यायाम के द्वारा ही उसे भगा देना चाहिए। प्रत्येक अङ्ग को सुदृढ़ और निरोग बनानेवाले प्राचीन तथा भारतीय ढंग के व्यायाम आसन आदि ही हैं। आज इनका महत्त्व योरुप आदि पाश्चात्य देशों के लोग भी भलीभांति समझने लगे हैं। इसलिए इनका प्रचार अमरीका आदि देशों में खूब बढ़ रहा है।

कलयुगी भीम प्रो० राममूर्ति इस विषय में अपना अनुभव लिखते हैं—

"पांच वर्ष की आयु में मुझे दमा के लक्षण दिखाई दिये। पिता जी की आज्ञा से मैंने व्यायाम करना आरम्भ कर दिया। जिसके कारण मेरा रोग दूर हो गया। मेरे सम्मुख भीमसेन, हनुमान् जैसे वीरों की मूर्तियां और चित्र सदैव रहा करते थे। मैं निरन्तर यही सोचा करता था, कि इनके समान नहीं हो सकता,

तो अपने शरीर को बलवान् तो अवश्य बना सकता हूं। दस वर्ष की आयु में स्थानीय कालिजियेट स्कूल के अखाड़े में भर्ती होगया। उन्हीं दिनों पहलवानों की कुश्ती की खबर सुनकर मेरे मन में भी उत्साह उत्पन्न होगया। मैं पहलवान बनने की इच्छा से व्यायाम करने लगा। ज्यों-ज्यों रुचि बढ़ती गई, त्यों-त्यों व्यायामों का अपना अभ्यास बढ़ाता गया। मैंने बड़े उत्साह से सैंडो का डम्बल घुमाना शुरु किया। परन्तु दो वर्ष के बाद ही उसे हताश होकर छोड़ दिया। इसका मुख्य कारण यह था कि उससे मुझे विशेष लाभ नहीं प्राप्त हुआ। प्रारम्भ की आयु में मैंने हारीजेंटलबार पैरेललबार, रिंग आदि विदेशी ढंग की कसरतें कीं। कुछ दिनों के पश्चात् इन्हें भी छोड़ दिया और देशी व्यायाम करने लगा। जितने देशीय प्रसिद्ध पहलवान मिलते गये, उन सबसे मैंने शारीरिक शक्ति बढ़ाने की भारतीय प्रथा और उपाय पूछे। परन्तु कोई सन्तोषप्रद विधि न बता सका। इस समय तक मैने इन्ट्रैन्स क्लास तक अंग्रेजी और थोड़ी संस्कृत पढ़ली थी। संस्कृत के पठन-पाठन में मुझे विशेष आनन्द आया। शारीरिक उन्नति के साथ-साथ अपने आर्य धर्म के शास्त्र मूल संस्कृत भाषा में पढ़े। गीता के साथ-साथ सुश्रुत आदि आयुर्वेदिक ग्रन्थ भी देखे। अपने शास्त्र के अध्ययन में मुझे शारीरिक उन्नति का सर्वोत्तम उपाय सुझाई पड़ा। अतः समस्त विदेशी ढंग छोड़कर यही ग्रहण किया और घोषणा करदी, कि भीम, द्रोण, हनुमान्, अर्जुन आदि पूर्वजों के गौरव को बढ़ाने वाली यही सर्वश्रेष्ठ व्यायाम की प्रणाली है। इस देशी व्यायाम में सामान और औजार आवश्यक नहीं। धन का कुछ व्यय नहीं। वह अभ्यास ही सब कुछ है, जिससे शरीर के पुट्ठे दृढ़ होते हैं। पुट्ठों की दृढ़ता के लिए प्राणायाम की आवश्यकता है। मैं प्रतिदिन ३ बजे से ६ बजे तक प्राणायाम करता था और १२ मील बिना

विश्राम पैदल चलता था। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन एक घण्टा जल में तैरता था।"

वे एक अन्य स्थान पर लिखते हैं—

"आरम्भ-आरम्भ में व्यायाम करने में शरीर अकड़ने लगता था। बहुत वार मैं आधा व्यायाम करके ही छोड़ देता। अखाड़े में आना दूभर ज्ञात पड़ता। किन्तु तुरन्त ही मेरे मन के देवता जाग पड़ते। अपने आदर्श को सिद्ध करने की मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी। यदि ऐसा न कर सकूं तो मृत्यु अच्छी। अन्त में दुर्बलताओं पर मुझे विजय मिली। धीरे-धीरे व्यायाम बढ़ने लगा, उस समय मेरे व्यायाम का ऐसा क्रम था—भोर ही उठकर घर से ३ कोस तक दौड़ता। एक फौजी खड़ा था, वहां जाकर खूब कुश्ती लड़ता। लड़कर फिर ३ कोस दौड़ता हुआ घर आता। यहाँ अपने चेलों के साथ कुश्ती लड़ता। उस समय अखाड़े में डेढ़ सौ जवान थे। उनसे कुश्ती करने के पश्चात् विश्राम कर, मैं तैरने चला जाता—। फिर सांझ को १५ सौ से लेकर ३ हजार तक दण्ड और ५००० से लेकर १०००० तक बैठक कर लेता, यही मेरा दैनिक व्यायाम था। इस का फल यह हुआ कि १६ वर्ष की आयु में मुझ में इतनी शक्ति हो गई, कि नारियल के पेड़ पर जोर से धक्का मारता, तो २-३ नारियल टूटकर भद-भद गिर पड़ते। इसी व्यायाम के कारण आज मेरी छाती ४८ इञ्च चौड़ी है और फैलाने पर ५७ इञ्च हो जाती है। शरीर की लम्बाई ५ फुट साढ़े छः इञ्च और तोल अढ़ाई मन है।"

राममूर्ति के बल के विषय में उस समय का एक लेखक लिखता है:—

"आज भारत के घर-घर में राममूर्ति का नाम फैला है। वह कलयुगी भीम है। हाथी को अपनी छाती पर चढ़ा लेते है। २५

घोड़ों की शक्ति की दो-दो मोटरें रोक लेते हैं। छाती पर बड़ीसी चट्टान रखकर उस पर पत्थर को टुकड़े-टुकड़े करवा देते हैं। आधी इञ्च मोटी लोहे की जंजीर कमल की डण्डी के समान सहज में ही तोड़ देते हैं। ५० मनुष्यों से लदी हुई गाड़ी को देह पर से उतरवा देते हैं। यही नहीं, ७५ मील की तेजी से दौड़ती हुई हवा गाड़ी उनके शरीर पर से पार हो जाती है। यह अलौकिक बल है, दैवी शक्ति है, सुनकर आश्चर्य होता है, देखकर दांतों तले अंगुली दबानी पड़ती है। किन्तु यह सब बातें देखने में असाध्य प्रतीत होने पर भी असम्भव नहीं हैं। यदि प्रयत्न करे तो प्रत्येक मनुष्य राममूर्ति के समान हो सकता है। प्रयत्न भी हो और सच्ची लग्न भी हो।''

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि राममूर्ति बाल्यकाल में श्वास रोग के रोगी थे। वे अपनी देह की निर्बलता पर बड़े दुःखा रहते थे। भीम, लक्ष्मण, हनुमान् आदि वीर योद्धाओं की कथा सुनकर उनके मन में सच्ची लग्न उत्पन्न हुई। उन्होंने व्यायाम को अपने जीवन का अङ्ग बनाया। वे ब्रह्मचर्य के कट्टर पक्षपाती थे शारीरिक और मानसिक पवित्रता को ब्रह्मचर्य की नींव समझते थे। ब्रह्मचर्य की धुन में ही उन्होंने ४४-४५ वर्ष की आयु तक विवाह नहीं किया। भारत के बालकों और युवकों के लिए उन्होंने ब्रह्मचर्य और प्राणायाम का क्रियात्मक प्रचार किया। उनका स्वभाव बड़ा हंसमुख था। वे हंसी को स्वास्थ्य के लिए बड़ा उपयोगी समझते थे।

वे सदैव कहा करते थे—

"मन से, वचन से और तन से पवित्र रहो। सादा भोजन करो। जीवन सरल रखो। प्रतिदिन व्यायाम करो। यही संसार में सुखी रहने का मूलमन्त्र है।''

वे नवयुवकों को सदैव इस प्रकार उत्साहित किया करते थे— "निष्फलता ! निष्फलता !! निष्फलता !!! क्या है ? हमने नहीं जाना। एक बार, दो बार, तीन बार, पांच बार, दस बार प्रयत्न करते चलो, सफलता अवश्य मिलेगी। "Do or die" 'करो या मरो' 'कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्' 'करूंगा या मरूंगा' यही हमारा मूल-मन्त्र है।"

वे भारत माता के होनहार बालकों की दुर्दशा देखकर उनके उद्धार के लिए व्याकुल होकर कहा करते थे—

'भारत के बालकों और युवकों का उद्धार—यही मेरे जीवन का मूल सूत्र है। वे चाहे कृष्ण और लक्ष्मण, भीम और भीष्म, या हनुमान् के समान हों या न हों, किन्तु देश में युवकों की एक अजेय सेना तैयार हो, यह मेरी मनोकामना है। देश के कोने-कोने में घूमकर मैंने युवकों को प्रोत्साहन दिया है। मन, वचन, तन और धन से भारत के नवयुवकों का मैं सेवक बना हूं। एक दिन मैं संसार से उठ जाऊँगा, किन्तु उसके पहले मैं यह आश्वासन चाहता हूं कि मेरी सेवा भारत माता के चरणों में स्वीकृत हुई है।"

व्यायाम के विषय में फांसी के तख्ते पर हंसते-हंसते झूलने वाले ब्रह्मचारी रामप्रसाद जी लिखते हैं—

"सब व्यायामों में दण्ड-बैठक सर्वोत्तम है। जहां जी चाहा, व्यायाम कर लिया। यदि हो सके तो प्रोफेसर राममूर्ति की विधि से दण्ड तथा बैठक करें। प्रोफेसर जी की रीति विद्यार्थियों (ब्रह्मचारियों) के लिए बड़ी लाभदायक है। थोड़े समय में ही पर्याप्त परिश्रम हो जाता है। दण्ड-बैठक के अतिरिक्त शीर्षासन और पद्मासन का भी अभ्यास करना चाहिए और अपने रहने के स्थान में वीरों, महात्माओं के चित्र रखने चाहियें।"

ब्रह्मचारी रामप्रसाद जी प्रोफेसर राममूर्ति की पद्धति से प्रतिदिन नियमपूर्वक व्यायाम करते थे। इससे उनको कितना आश्चर्यजनक लाभ हुआ, इस विषय में वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं—

व्यायाम आदि करने के कारण मेरा शरीर बड़ा सुगठित हो गया था और रंग निखर आया था। मेरा स्वास्थ्य दर्शनीय हो गया। सब लोग मेरे स्वास्थ्य को आश्चर्य की दृष्टि से देखा करते।''

ब्रह्मचारी रामप्रसाद जी के विषय में एक स्थान पर लिखा है–

"उनमें असाधारण शारीरिक बल था। तैरने आदि में वे पूरे पण्डित थे। थकान किसे कहते हैं, वह जानते ही न थे। ६०-६१ मील निरन्तर चलकर वह आगे चलने का साहस रखते थे। व्यायाम और प्राणायाम वह इतना करते थे कि देखनेवाले आश्चर्यान्वित होते थे।''

व्यायाम और प्राणायाम

वास्तव में प्रोफेसर राममूर्ति की पद्धति कोई अपनी निज की पद्धति नहीं, वह तो हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों की ही पद्धति है। प्रोफेसर राममूर्ति ने मुख्यतया व्यायाम के लिए जिस नियम का आश्रय लिया वह प्राणायाम है। वे स्वय इस विषय में लिखते हैं –

"व्यायाम प्राणायाम के साथ करो अर्थात् श्वास मुख से न लेकर नाक से लो और पूरक, कुम्भ और रेचक करते हुए करो।''

लोग यह समझते हैं कि प्राणायाम तो योग का ही एक अङ्ग है। इसका व्यायाम के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। इसी भूल के कारण लोगों को व्यायाम से पूर्ण लाभ नहीं होता। प्राणायाम व्यायाम का प्राण है और इसका हमारे शरीर के साथ सीधा सम्बन्ध है, यह समझ लेना आवश्यक है। इस लिये थोड़ा खोलकर लिखा जाता

जब कोई व्यायाम आरम्भ करता है, तो उसके पुट्ठों वा मांसपेशियों में पीड़ा हो जाती है। इसका अधिक अनुभव उस व्यक्ति को होता है, जो प्रतिदिन व्यायाम नहीं करता। किन्तु एक दिन देखा-देखी वा किसी के उत्साहित करने पर सौ-पचास बैठकें इकट्ठी ही लगा डालता है अथवा एकाध मील की दौड़ लगा लेता है। इस से उसकी रानें और पिंडलियां अकड़ जाती हैं और भरी भरी प्रतीत होती हैं। उठने-बैठने में बड़ा कष्ट होता है। क्योंकि जिन पुट्ठों से कभी कार्य नहीं लिया गया, ऐसे सुख (आराम) में रहनेवाले पुट्ठों के छोटे छोटे भाग (रेशे) व्यायाम करने से टूट जाते हैं और यह टूट कर शरीर में इकट्ठे हो जाते हैं और इनसे सूजन उत्पन्न होकर कष्ट होता है। किन्तु प्रतिदिन व्यायाम वा परिश्रम के अभ्यास से वे ही भाग (रेशे) सुदृढ़ हो जाते हैं और टूटते ही नहीं अथवा बहुत कम टूटते हैं। क्योंकि हमारे रक्त में जो प्राणवायु है, वह इन टूटे हुए भागों (रेशों) को जीवनशक्ति (ओक्सीजन) श्वास द्वारा बाहर के शुद्ध वायु से हमारे अन्दर आती रहती है और प्रश्वास द्वारा टूटे हुए व्यर्थ के भागों (रेशों) वा रक्त के मल आदि से मिलकर बना हुआ विषैला वायु (कार्बन) बाहर निकल जाता है। यही कारण है कि व्यायाम करने के समय श्वास चढ़ जाता है और श्वास प्रश्वासों की गति बढ़ जाती है। क्योंकि साधारण अवस्था में टूट फूट कम होती है। इसलिए साधारण श्वास-प्रश्वास से कार्य चल जाता है। किन्तु व्यायाम करने से जब टूट-फूट अधिक बढ़ जाती है, तब इसको ठीक करने के लिए अधिक प्राणवायु चाहिए और अधिक प्राणवायु के लिए अधिक श्वास और प्रश्वास की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए व्यायाम के समय अधिक श्वास चढ जाते हैं। जब व्यायाम के समय अधिक श्वास चढ जाते हैं और प्राणवायु हमारे फेफड़ों में जाता है और रक्त के

साथ मिलकर शरीर के कोने कोने में व्याप्त हो जाता है, तो उस समय यह शरीर की उष्णता को पसीने के द्वारा बाहर निकालता है। इसलिए व्यायाम करने से हमें पसीना आता है। जिस समय हम कोई कठोर व्यायाम करते हैं, तब श्वास-प्रश्वास की गति बढ़ जाती है। कार्बन के ओसजन के साथ मिलने से जो रासायनिक क्रिया होती है, उससे शरीर की उष्णता भी बढ जाती है। यदि प्राण और अपान को टक्कर वा संघर्ष से उत्पन्न हुई उष्णता को कम न कर दिया जाये तो ज्वर हो जाये। क्योंकि शरीर की उष्णता बढ जाने का ही नाम ज्वर है। इस अधिक बढी हुई उष्णता को हमारा प्राण-वायु श्वास-प्रश्वास तथा पसीने के द्वारा हमारे शरीर से बाहर निकाल फेंकता है। उष्णकाल में हम जल को ठण्डा रखने के लिए उसे मिट्टी के घड़े में भर देते हैं। ऐसा करने से घड़े के बाह्य भाग पर जो जल आजाता है, वह उष्णवायु के साथ छूकर वाष्प (भाप) बन जाता है। वाष्प बनने के लिए जिस उष्णता की आवश्यकता होती है, उसको घड़े के जल से ले लेता है। इसी प्रकार जब व्यायाम आदि के कारण हमारे शरीर में उष्णता बढ़ती है तब घड़े के समान हमारा शरीर भी पसीजने लगता है और पसीने के द्वारा शरीर में बढ़ी हुई उष्णता बाहर निकल जाती है और पसीने के साथ ही अनेक प्रकार के विजातीय मल (विष) जो अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति के कारण हैं, सहज में ही शरीर से बाहर निकल जाते हैं।

इसलिए वेद भगवान् ने भी व्यायाम को परम आरोग्य का मुख्य साधन माना है—

विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे॥

(अथर्व० कां० २; सू० ४. मं० ४)

निर्बल करनेवाले शोषक रोगों को और सब राक्षसों अर्थात् सब रोग-कृमियों को हम व्यायाम के द्वारा दबाते हैं वा नष्ट करते हैं।

पाठक ! इतना लिखने से समझ गये होंगे कि श्रम (थकान) को दूर करने के लिए, टूटे हुए पुट्ठों को जोड़ने के लिए अथवा उनमें नवजीवन लाने के लिए और व्यायाम से उत्पन्न हुए विष को दूर करने के लिए प्राणवायु की बड़ी भारी आवश्यकता है।

इसलिए हमें अपने शरीर के अन्दर अधिक से अधिक प्राण-वायु को प्रविष्ट करना चाहिए। प्राणवायु का अधिक प्रवेश शीघ्र-शीघ्र श्वास लेकर अथवा गहरे श्वास लेकर ही किया जा सकता है। जिस प्रकार नदी का मार्ग भीड़ा होने से उसकी धार वा गति का वेग बढ़ जाता है उसी प्रकार हमें भी व्यायम के समय शीघ्र श्वास लेना पड़ता है और हमारा श्वास फूल जाता है। यदि हम चाहते हैं कि हमारा श्वास न फूले, तो हमें गहरे श्वास लेने का स्वभाव डालना चाहिए। गहरा श्वास सारे फेफड़ों में जाता है। प्राय: लोगों को श्वास लेना नहीं आता। उनका थोड़ासा श्वास थोड़े से फेफड़ों में जाकर उलटा चला आता है। गहरे श्वास लेने का स्वभाव अभ्यास से ही होता है अनेक रोगों, पैतृक दोषों और लेटने बैठने की विधि न जानने के कारण लोग छोटे छोटे श्वास लेते हैं। इसीलिए फेफड़ों के अनेक रोगों में ग्रस्त रहते हैं। इसलिए व्यायाम के समय हमें गहरा श्वास लेने का अभ्यास करना चाहिए। जिससे हमारे फेफड़े स्वस्थ और लचकीले हो जायें। व्यायाम में गहरे श्वासों का नाम ही प्राणायाम है। गहरा श्वास लेने के समय हमें मन की शक्ति के द्वारा फेफड़ों के प्रत्येक भाग में वायु पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए। व्यायाम के समय हमारी नासिका के दोनों छिद्र शुद्ध और खुले हुए होने चाहियें। आसन, दण्ड, बैठक कोई भीं व्यायाम आप करें, सदैव प्राणायाम के साथ करें। यही हमारी प्राचीन शैली है। प्राणायाम वा गहरे श्वास लेने के महत्त्व को अब योरप आदि पाश्चात्य देशों के लोग भी समझने लगे हैं। और यही प्राणायाम की विधि Deep breathing

के नाम से प्रसिद्ध है।

इङ्गलिस्तान के डाक्टर ऊस्टेस माइल्ज अपनी एक पुस्तक में श्वास लेने की विधि के विषय में लिखते हैं—

"पूर्ण श्वास लेने की विधि प्राचीन आर्यग्रन्थों में लिखी है। श्वास सावधानी से लो अर्थात् यदि तुम प्राकृतिक रूप से भलीभांति श्वास लेना नहीं जानते तो अभ्यास करो। श्वास गहरा लेना चाहिए कि सम्पूर्ण फुफ्फुस भर जावें और फिर सम्पूर्ण श्वास बाहर भी निकालना चाहिए। उत्तम रूप से श्वास लेने का अभ्यास बहुत गुणकारी है और एक ऐसी कला है जिसे मनुष्य को प्रतिक्षण पूर्ण करते रहना है, बुढ़ापे में जाकर इसे छोड़ा नहीं जा सकता। वह इसे मरते दम तक पूरा करता है और लाभ उठा सकता है। सहस्रों मनुष्य ऐसे हैं जो श्वास लेने की ठीक विधि को नहीं जानते। उत्तम प्रकार से एक दो वर्ष श्वास लेने का अनुभव करलो, फिर तुम्हें स्वयं ज्ञात हो जायेगा कि फुफ्फुस की वायु की मात्रा दुगुनी हो गई है।"

वे आगे लिखते हैं—"उत्तम विधि से श्वास लेना शारीरिक स्वास्थ्य और स्वास्थ्य रक्षा के नियमों के लिए है। इससे स्वास्थ्य बढ़ता है, उत्तम रूप से श्वास लेने से रूप-रङ्ग ठीक हो जाता है और मनुष्य का जीवन सुख भोगने के योग्य हो जाता है और हार्दिक वा मानसिक विचार उत्तम हो जाते हैं। उत्तमरूप से श्वास लेने से धन और शक्ति व्यर्थ नष्ट नहीं हो पाती। इससे मनुष्य अपने शरीर और मन को वश में कर सकता है।"

वैसे तो कोई भी व्यायाम करें फुफ्फुस का व्यायाम भी साथ ही होता जाता है। क्योंकि सभी व्यायामों में श्वास शीघ्र-शीघ्र आता जाता है, इससे फुफ्फुस खूब बढ़ते और सिकुड़ते हैं। अच्छे से अच्छा वायु रक्त को शुद्ध करता है। रक्त का भ्रमण बढ़ता है

और शरीर का मल (मवाद) बाहर निकलता है। कुछ मल तो स्वेद द्वारा निकल जाता है, कुछ व्यायाम की उष्णता से जल जाता है, कुछ रक्त के साथ मिलकर फुफ्फुस में आकर शुद्ध हो जाता है। कुछ श्वास मार्ग से बाहर निकल जाता है, कुछ मल मूत्र के साथ बाहर निकल जाता है। ये सब लाभ व्यायाम से होते हैं। किन्तु प्राणायाम वा गहरे श्वासों के अभ्यास के द्वारा रक्त और शरीर की शुद्धि और फुफ्फुस का व्यायाम अन्य सभी व्यायामों की अपेक्षा सैंकड़ों गुना लाभदायक होता है। इसलिए अन्य धार्मिक नित्य कर्मों के साथ दैनिक प्राणायाम करने की आज्ञा प्राचीन शास्त्रों ने दी है। गहरे श्वासों के अभ्यास का नाम ही प्राणायाम है यह पहले ही बताया जा चुका है। अतः सदैव गहरे श्वास लेवें।

गहरे श्वास लेने की विधि का अभ्यास

किसी ऐसे शान्त और एकान्त स्थान में जहाँ का वायु शुद्ध और शीतल हो, जिसमें धूल वा धूआँ आदि हानिकारक वस्तुएं न मिली हुई हों, सिद्धासन वा किसी आसन में जिसमें आप सुखपूर्वक बैठ सकते हों, इस प्रकार बैठ जायें कि आपकी छाती, ग्रीवा (गला) और सिर तीनों एक सीध में रहें, मेरुदण्ड (रीढ की हड्डी) भी सीध में रहना चाहिए। धीरे-धीरे नासिका द्वारा श्वास को बाहर निकालें, जब तक छाती, आमाशय (पेट) रिक्त न हो जावें, श्वास को निरन्तर निकालते रहें अर्थात् सारा वायु निकाल देना चाहिए इस श्वास के बाहर निकालने की क्रिया को रेचक कहते हैं। फिर इसी प्रकार धीरे-धीरे श्वास को भीतर लें और जब तक छाती और आमाशय भली भांति न भर जाएं, लेते ही रहें, इस श्वास के भरने की क्रिया को पूरक कहते हैं। इस प्रकार आरम्भ आरम्भ में रेचक और पूरक का अनेक बार अभ्यास करें। जब एक दो मास के अभ्यास के पश्चात् श्वास का निकालना और भरना भलीभांति

आजावे तभी बाहर वा अन्दर श्वास के रोकने का अभ्यास करना चाहिए।

श्वास के बाहर वा अन्दर रोकने के अभ्यास का नाम ही कुम्भक है। यदि किसी की इच्छा आरम्भ में ही श्वास के रोकने की हो तो थोड़ी देर रोकना चाहिए। रोकने का समय धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए, बलपूर्वक रोकने से हानि होती है। अभ्यास से बाहर और भीतर दोनों ओर श्वास के रोकने की अवधि वा कुम्भक का समय स्वयमेव बढ़ जाता है। रेचक वा पूरक का अभ्यास सीधे खड़े होकर, लेटकर, चलते हुए अथवा पश्चिमोत्तान आसन में भी किया जा सकता है। व्यायाम करने से पहले एक दो बार भस्त्रिका प्राणायाम करने से बड़ा लाभ होता है, जिसकी विधि मेरी प्राणायाम पुस्तक में देख लेवें। इस प्रकार भस्त्रिका तथा गहरे श्वासों का किया गया यह अभ्यास फेफड़ों को स्वस्थ और लचकीला बना देता है। लचकीले फेफड़ों में श्वास वा प्राण की मात्रा अधिक आती है। जब हम एक वार में अधिक प्राण अन्दर भर लेंगे तो शीघ्र ही दूसरा श्वास लेने की आवश्यकता न होगी। इसी को गहरा वा उत्तम श्वास कहते हैं। इस प्रकार व्यायाम सम्बन्धी प्राणायाम का अभ्यास कर लेने के पश्चात् अभ्यासी को रात दिन गहरे श्वास लेने का ही अभ्यास पड़ जाता है। वह व्यायाम वा अन्य प्रकार के परिश्रम से भी थकता नहीं। और उसका शरीर शुद्ध, स्वस्थ, सुन्दर, सुदृढ़, निर्मल और दीर्घायुवाला हो जाता है। क्योंकि व्यायाम के प्रत्येक श्वास का सीधा सम्बन्ध हमारे स्वास्थ्य, बल और आयु के साथ है, इसलिए व्यायाम करते समय ब्रह्मचारी क्या सभी को फेफड़ों और गहरे श्वास लेने का पूरा ध्यान रखना चाहिए। व्यायाम करते समय जब शरीर वा शरीर के किसी अङ्ग को बल लगाना पड़ता है वा विशेष परिश्रम करना पड़ता है, उस समय

श्वास अन्दर भरा हुआ होना चाहिए और श्वास को अन्दर ही रोकना चाहिए अर्थात् आभ्यन्तर कुम्भक करें। व्यायाम में किस समय रेचक, पूरक वा कुम्भक करना चाहिए यह आप भली-भांति दण्ड, बैठक आदि की विधि से समझ जायेंगे।

प्रोफेसर राममूर्ति के व्यायामों में श्वास की क्रिया का बहुत ध्यान रखा जाता है। इसलिए जिन दण्ड-बैठकों का वे प्रचार करते थे तथा नवयुवकों और विद्यार्थियों के लिए अधिक उपयोगी समझकर उन्हें सदैव करने का अनुरोध किया करते थे, उन्हीं का उल्लेख किया जाता है:—

"व्यायाम तो सभी पहलवान करते हैं, किन्तु वे व्यायाम के साथ श्वास के नियमों का ध्यान नहीं रखते। इसलिए उनकी शक्ति को हानि पहुँचना स्वाभाविक बात है।"

प्रो० राममूर्ति ने प्राचीन आयुर्वेद शास्त्रों का अध्ययन किया था। इसलिए इस त्रुटि को दूर करने का प्रयत्न किया और इसमें उन्हें सफलता भी मिली। इसलिए प्रो० राममूर्ति के सभी व्यायामों का (देशी होते हुए भी) विशेष आदर है। क्योंकि उन्होंने प्राचीन प्रणाली का अनुसरण किया है और श्वास-प्रश्वास के नियमों का व्यायाम में विशेष ध्यान रखा है। इसलिए उनके व्यायाम शरीर के अन्य अङ्गों की भांति मानसिक शक्तियों के लिए भी लाभदायक हैं।

प्रो० राममूर्ति ने देशी व्यायामों में दण्ड और बैठकों की बहुत प्रशंसा की है। उनका दृढ़ विश्वास है कि शरीर के बनाने में इनसे बहुत अच्छी सहायता मिलती है। उनकी दण्ड-बैठक करने की विधि नीचे दी जातो है। दण्ड-बैठक भी एक प्रकार के आसन ही हैं इसलिए दण्डों को दण्डासन भी कहते हैं।

दण्डों के अनेक प्रकार हैं। साधारण दण्ड एक हाथ (बगल) का दण्ड, एक पैर का दण्ड, अंगुली का दण्ड, अंगूठा दण्ड, एक पैर उठाकर दण्ड, भार उठाकर दण्ड, कुर्सी दण्ड और प्रो० राममूर्ति का दण्ड इत्यादि दण्डों के बहुत प्रकार हैं। यहां केवल प्रो० राममूर्ति के दण्ड की विधि जो सभी के लिए तथा विशेषतया ब्रह्मचारियों के लिए सर्वश्रेष्ठ है, खोलकर लिखी जाती है।

दण्ड की विधि

हाथों की हथेलियों को भूमि पर रखकर और पैरों को पीछे फैलाकर दण्ड करने के लिए तैयार हो जावें। पैरों की एड़ियां उठी रहें और पैरों का भार उनकी अंगुलियों पर रहे, दोनों हाथ और दोनों पैरों के बीच में छाती की चौड़ाई के समान अन्तर रहना चाहिए, सामान्यतया दो बालिश्त का अन्तर ठीक रहता है।

दण्ड की पूर्वावस्था
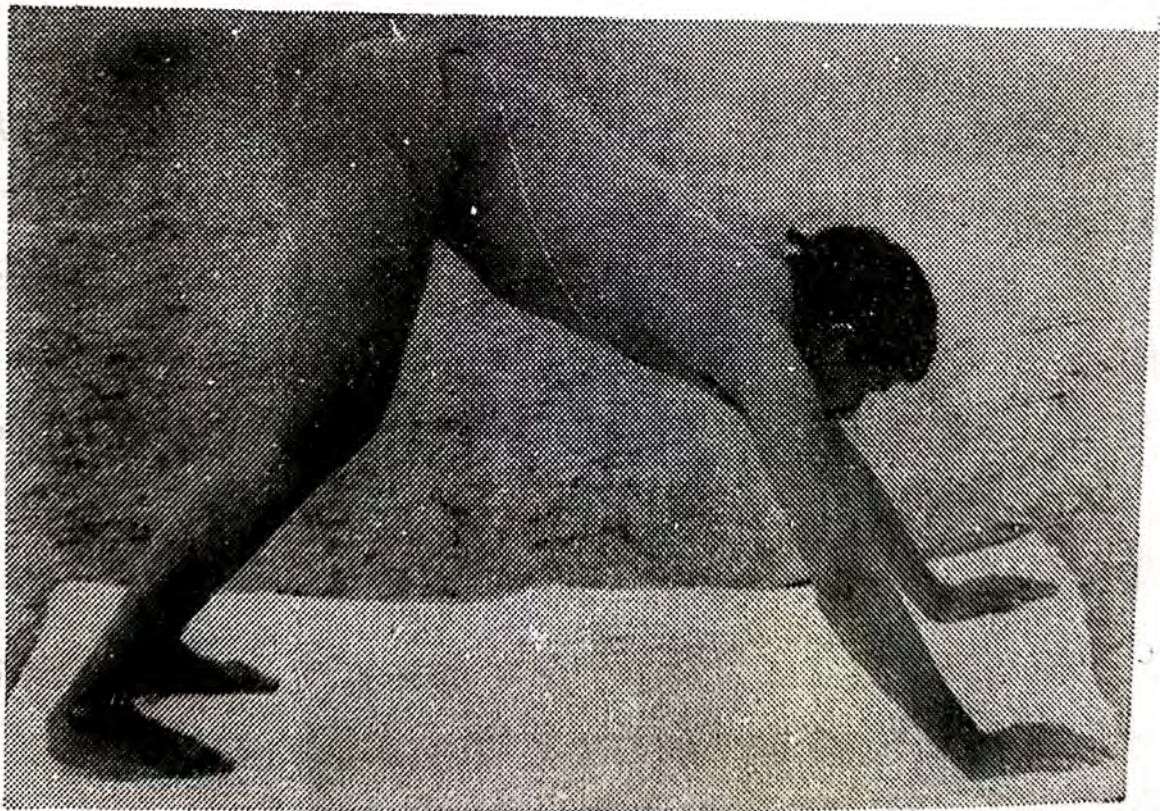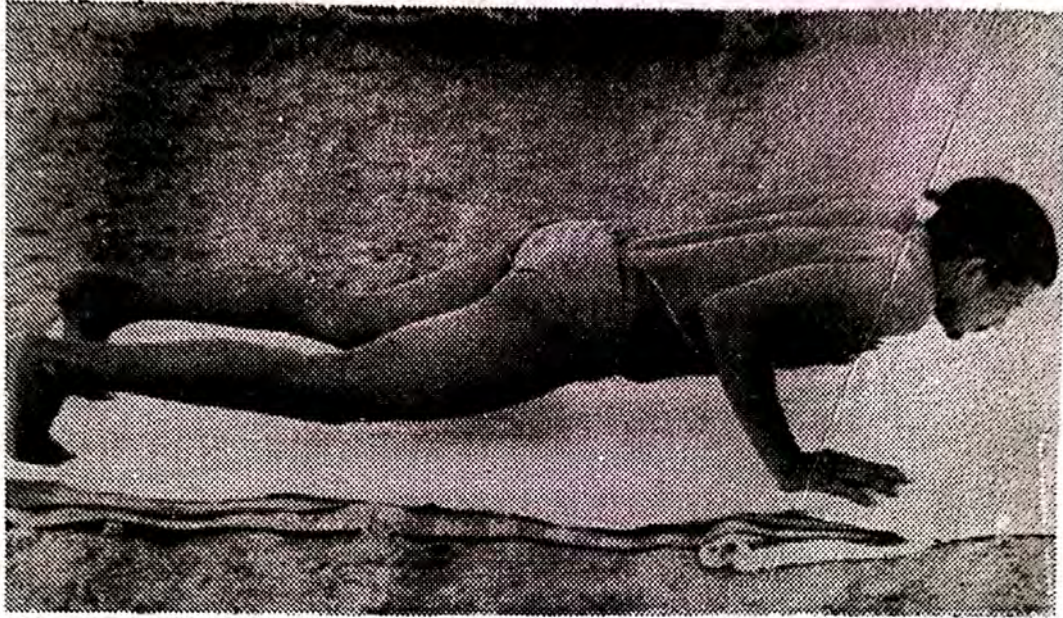
दण्ड की मध्य स्थिति

दण्ड की समाप्ति

दण्ड की तैयारी में दण्ड करने से पूर्व पीठ और कमर ऊपर को उठी रहे। कमर को जितना हो सके पीछे खींचना चाहिए। ग्रीवा (गर्दन) छाती की ओर झुकी रहे, यहां तक कि ठोडी वक्षःस्थल (छाती) को स्पर्श करती हो और आंखों की दृष्टि पेट की तोंदी पर हो। पीछे पैरों के पंजे भूमि पर लगे रहें, हाथ और पैर अपने स्थानों को न छोड़ें। आगे की ओर बढ़कर हाथ बिल्कुल सीधे हों। अब कमर और छाती को नीचे ले जायें, हाथों को कोहनियों पर से झुकाते चले जायें। नीचे जाते हुए दण्ड करने से पूर्व लम्बा श्वास खींचें और जितना प्राण आप अपने अन्दर भर सकते हैं भर लें। कोहनियों के ऊपर का भाग छाती की ओर के हाथ पार्श्वों (बगलों) को स्पर्श करेगा, सिर और ग्रीवा सीधी रहेगी, पैर घुटनों से मुड़ने न पावें। छाती को नीचे ले जाकर इतनी नीची करें जितनी वह जा सकती है किन्तु भूमि से स्पर्श न हो। नितम्भ (चूतड़) और मस्तिष्क ऊँचे रहें। दण्ड की इस स्थिति में आकर अपने मन को व्यायाम की क्रिया पर एकाग्र करें। और इसके पश्चात् सिर और छाती को ऊपर उठाकर हाथों को सीधा खड़ा करदें। अब कमर नीची हो जाएगी, मस्तिष्क और छाती ऊंचे होंगे। उठने के समय कन्धों को आगे की ओर खींचकर कमर को खूब तोड़ (खींच) देना चाहिए। इस अवस्था में भी श्वास को रोके रखना चाहिए। इसके पश्चात् मस्तिष्क को नीचा झुकाते हुए और ठोड़ी से छाती को स्पर्श करते हुए जब अपनी पहली स्थिति में आजायें तब धीरे-धीरे श्वास छोड़ें। और श्वास छोड़ते हुए वहां तक भीतर के वायु को निकालें, जहां तक निकालना संभव हो, किन्तु कष्ट के साथ नहीं, सुखपूर्वक। फिर धीरे-धीरे श्वास को खींचकर जितना वायु भर सकें भरें, और दण्ड की इसी क्रिया को फिर दूसरी बार करें।

इस प्रकार अपनी शक्ति तथा अभ्यास आदि के अनुसार दण्ड का व्यायाम करें। जितने दण्ड करने से श्वास फूल न जायें उतने दण्ड एक बार में करने चाहियें। और एक दण्ड में न्यून से न्यून ४-५ सैकिण्ड का समय अवश्य लगाना चाहिए। श्वास उखड़ने वा नासिका की जड़ सूखने के पश्चात् भी दण्ड आदि व्यायाम करते जाने से हानि होती है। एक बार दण्ड करने के पश्चात् कुछ गहरे श्वास लेने चाहियें। थके हुए पुट्ठों पर हाथ फेरना चाहिए और थकान दूर होने पर यदि अधिक करने की इच्छा और शक्ति हो तथा पौष्टिक भोजन का प्रबन्ध हो तो द्वितीय बार और तृतीय बार भी दण्ड कर लेने चाहियें। दण्ड करते समय श्वास के उतार-चढ़ाव अर्थात् रेचक और पूरक पर हमारा पूरा अधिकार रहे और कुम्भक ध्यानपूर्वक करना चाहिए। श्वास की प्रक्रिया ठीक होने से मनुष्य शीघ्र नहीं थकता, श्वास नहीं चढ़ते, दम नहीं फूलता और उसे उष्णता भी प्रतीत नहीं होती। जब दण्ड करते समय अपनी हथेली और पैर के पंजों पर सम्पूर्ण शरीर का भार झुकाया और उठाया जाता है तब बंधी हुई चाल से श्वास के नीचे आने और ऊपर खींचने में बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। नसें तन जाती हैं, मुख पर तेज और कान्ति चमचमाती है, आंखें चढ़ जाती हैं, नथुने फूलने लगते हैं, शरीर के जोड़ और गांठ चटकने लगती हैं। छाती, बाहु, स्कन्ध, जांघ और ग्रीवा धीरे-धीरे फूलती जाती हैं। दण्ड पेल कर निवृत्त होने के पश्चात् एक बार भुजदण्ड छाती के खिलने वा फूलने पर जब दृष्टि पड़ती है तो प्रसन्नता से बाहु फड़क कर आप ही आप भुजदण्ड फड़क उठते हैं और सुडौल देह के गर्व में ग्रीवा भी तन जाती है। दण्ड करते समय देह सीधी और तनी रहे साथ ही श्वास की गति भी सधी रहे। शरीर दण्ड करते समय दृढ़ता से जमाई हुई बाहुओं के बल पर जब धीरे-धीरे नीचे झुकायें और

ऊपर उठायें उस समय बिल्कुल सीधा तना हुआ रहना चाहिए। मांस पेशियों वा पुट्ठों को अकड़ाना चाहिए। पैरों के पंजे भी टस से मस नहीं होने चाहियें। अङ्गों को गति देते समय श्वास की गति वा बागडोर को कड़ी वा वश में रखना चाहिए।

साधारणतया सभी का विचार यह है कि दण्ड करने से शरीर के ऊपर आधे भाग का व्यायाम होता है और कटि (कमर) से नीचे के भाग का व्यायाम बैठक करने से होता है। जिस प्रकार दण्ड करने के बहुत प्रकार प्रचलित हैं उसी प्रकार बैठकें भी बहुत प्रकार की हैं। परन्तु प्रो० राममूर्ति की बैठक का प्रकार नीचे दिया जाता है।

सपाट बैठक की विधि

सपाट बैठक

पैरों के बल सीधे खड़े हो जायें। पैरों में लगभग छः इञ्च का अन्तर हो। दोनों हाथ लटकते हुए अपनी-अपनी ओर की जङ्घाओं से स्पर्श करते हों। इसके पश्चात् एड़ियों को भी ऊपर उठालें और पैर के पंजों, अ ंगुलियों, वा अंगूठों पर ही रहें। छाती तनी हुई अर्थात् आगे को उभरी हुई हो। शरीर सीधा समरेखा में हो। धीरे-धीरे श्वास भरकर कुम्भक कीजिए और अपने आगे ६ इंच के अन्तर पर कूदकर मुट्ठी बांधते हुए धीरे-धीरे बैठना आरम्भ करें। हाथों को भी धीरे-धीरे आगे बढ़ाएं, यहां तक कि कन्धों की सीध में आजाएं। मुट्ठियां बन्द ही रहें, एड़ियां भूमि में न टिकें, पूरा बैठ चुकने पर भी पिण्डलियां और जांघ एक दूसरे को स्पर्श न करें, दोनों में आधा इञ्च का अन्तर रहना ही चाहिए। जब बैठ चुकें तब दोनों हाथों को कोहनियों पर से मोड़ते हुए धीरे-धीरे कन्धों की ओर लायें। हाथ की मुट्ठियां कन्धों से स्पर्श न करें, उनमें भी आधा इञ्च का अन्तर हो। कुछ क्षण वहां ठहर कर धीरे-धीरे उठें। पूरा उठ चुकने पर पीछे कूदकर अपने स्थान पर आजायें, और हाथों को यथापूर्व अपने स्थान पर ले आयें और श्वास को रेचक करके निकाल दें। यह सदैव ध्यान रखें कि धीरे-धीरे उठें और बैठें। बैठक लगाने से पूर्व कुम्भक करें, बैठक की समाप्ति पर रेचक करें, बीच में श्वास न लें, नासिका द्वारा पूरा श्वास भरलें। यह न हो कि बीच में पुनः श्वास खींचना पड़े और निकालते समय सारा ही श्वास निकाल डालें। उठते-बैठते प्रत्येक अवस्था में शरीर सीधा रहे, कटि से लेकर छाती तक का भाग तना रहे, ढीला न हो, छाती कड़ी और आगे निकली रहे। मुट्ठियों को इतने जोर से बांधे रखें कि हाथ थरथराने वा कांपने लगें।

साथ ही मन को जंघाओं और पिण्डलियों पर एकाग्र करके यह ध्यान करें कि मेरे सारे पैर के भागों में बल, शक्ति, दृढ़ता और ओज का संचार हो रहा है। और वेद भगवान् की इस आज्ञानुसार "ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु ॥ (पारस्कर गृ० कां० १ कण्डिका ३ सूत्र २५)" मेरी जङ्घाओं में ओज अर्थात् स्थिर रहने और चलने की शक्ति आरही है और दुर्बलता, अशक्तता दूर हो रही है। एक बार बैठक की क्रिया करने में न्यून से न्यून १-२ मिनट लगाना ही चाहिए। शक्ति अनुसार इस समय को बढ़ा भी सकते हैं। सैकड़ों बैठकों के स्थान पर यदि ये १० बैठक भी कर ली जायें तो पर्याप्त रहती हैं और अधिक लाभ करती हैं। इन बैठकों से जांघ, पिंडली आदि पैर के सभी अङ्गों का और साथ ही हाथों का भी व्यायाम होता है। और हाथ और पैर दोनों के पुट्ठे (मांस पेशियां) बनते हैं। आरम्भ में ये बैठकें ४-५ ही करनी चाहियें और फिर शक्ति के अनुसार बढ़ा सकते हैं। यदि इन्हीं बैठकों को एक ही स्थान पर खड़े होकर किया जाए, आगे पीछे न कूदा जाए तो ये साधारण बैठकें कहाती हैं। कूदने के कारण ही इनका नाम 'सपाट' पड़ा है। दोनों प्रकार से इन्हें कर सकते हैं। जैसी भी इच्छा हो करें, किन्तु सपाट बैठक अधिक लाभ करती हैं।

एक भ्रम और उसका निराकरण

लोगों में यह भ्रम बहुत बुरी प्रकार से फैला हुआ है कि बैठक का व्यायाम ब्रह्मचारी वा विद्यार्थी के लिए अच्छा नहीं होता। यह सर्वथा निर्मूल है बैठकों से ब्रह्मचर्य में कोई हानि नहीं होती। किन्तु इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि ब्रह्मचारी वा विद्यार्थी अथवा अन्य जो कोई भी मस्तिष्क से कार्य करनेवाले हैं उन्हें बैठकों की अपेक्षा दण्ड आदि छाती और मस्तिष्क के व्यायाम

अधिक करने चाहिएं। साधारण नियम यही है कि बैठकें दण्डों से आधी होनी चाहियें।

आजकल अखाड़ों में पहलवान लोग दण्ड की अपेक्षा बैठकें अधिक करते हैं। क्योंकि पहलवानों को मोटी-मोटी और चढ़ी हुई सुन्दर जांघें प्रिय होती हैं। और मल्लयुद्ध में टांगों से वे कार्य भी अधिक लेते हैं किन्तु आप बड़े से बड़े पहलवानों को देखें, चाहे उनके शरीर कितने ही सुन्दर, सुदृढ़ वा सुडौल हों, किन्तु उनके मुख निस्तेज, कान्तिहीन और कुरूप पायेंगे।

आजकल अखाड़ों में जो व्यायाम की पद्धति प्रचलित है, उसमें बड़े भारी सुधार की आवश्यकता है। दण्ड-बंठक करते समय मल्ल लोग इतनी शीघ्रता करते हैं कि यन्त्र (मशीन) के अवयव (पुर्जे) उनकी समानता नहीं कर सकते। इसी कारण श्वास-प्रश्वास की क्रिया अत्यन्त वेग से और शीघ्र होने लगती है। ग्रीष्मकाल में उष्णता के कारण कुत्ते के समान हांपने लगते हैं। कोई-कोई खम्भे, रस्सी, वृक्ष वा भित्ति आदि को ही पकड़कर बैठकें लगाते हैं और कटि (कमर) को उस समय सीधा ही नहीं करते। इन बैठकों से बहुत हानि होती है। इस प्रकार शीघ्रता से और अनियमित रूप से दण्ड-बैठक आदि व्यायाम करने से कोई लाभ नहीं होता।

साधारण बैठक और सपाट (कूद) बैठक ही सब से अच्छी होती हैं। इनके अतिरिक्त भी हनुमान् बैठक, वीर बैठक, मुख फेर बैठक, एक पांव-पसार बैठक. अंगमरोड़ बैठक और घुटने-मरोड़ बैठक इत्यादि अनेक प्रकार की बैठकें हैं, जिनके नियमित अभ्यास से लाभ होता है। बैठकों के समान दौड़ना, तैरना इत्यादि पैरों के अनेक व्यायाम हैं। किन्तु शरीर जितना सुन्दर और सुडौल दण्ड-बैठक के लगाने से होता है उतना दौड़ आदि अन्य व्यायामों से नहीं।

दौड़

प्रकट रूप में तो दौड़ने से टांगों का ही अधिक व्यायाम होता है, किन्तु दौड़ने का व्यायाम सारे शरीर के लिए उपयोगी है। इस से पैरों के अतिरिक्त छाती, फेफड़ों और पेट आदि का भी व्यायाम होता है। दौड़ से तो फेफड़ों को अत्यन्त लाभ पहुँचता है। क्योंकि दौड़ते समय भस्त्रा वा भस्त्रिका प्राणायाम बहुत अच्छी प्रकार से होता है, जिससे फेफड़े वज्र वा इस्पात के समान सुदृढ़ होजाते हैं और रक्त-सञ्चार के लिए भी बहुत अच्छा है। निःसन्देह टांगों का बल तो दौड़ से बढ़ता ही है। परन्तु फेफड़ों को शुद्ध और पुष्ट करने, हृदय को गतिशील बनाये रखने, और सुदृढ़ करने तथा रक्त को शुद्ध करने के लिए भी दौड़ने का व्यायाम बहुत उत्तम है। दौड़ने से मनुष्य में स्फूर्ति (चुस्ती) तथा कर्मण्यता आती है। फेफड़ों के बलवान् होने से कास (खांसी) प्रतिश्याय (जुकाम) आदि रोग नहीं सताते। बालक, युवा, वृद्ध और स्त्री सभी के लिये भागने का व्यायाम उत्तम है। प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व दौड़ लगाना ब्रह्मचारी और विद्यार्थी के लिये तो अत्यन्त हितकर है।

ब्रह्मचारी ही नहीं, सभी को नंगे पांव दौड़ने से अधिक लाभ होता है। बाल्यावस्था तथा वृद्धि अवस्था में यदि जूता आदि पहनकर दौड़ा जाएगा तो पांव का स्वाभाविक विकास और वृद्धि नहीं हो सकेगी। इसीलिए पैरों के विकास का ही ध्यान रखकर ऋषियों ने "उपानच्छत्रधारणं वर्जय" जूता और छत्र (छाता) का धारण निषेध किया है। दौड़ते समय पांव उठा-उठाकर पंजों के ऊपर ही दौड़ना चाहिये अर्थात् पैरों का अगला भाग ही भूमि पर टिका रहे, एड़ियां भूमि में न टिकें। छाती आगे की ओर निकली और तनी रहे तथा कन्धे पीठ की ओर झुके रहें। मुट्ठी बांधकर

दोनों हाथों को छाती के बराबर रखें। नेत्र दृष्टि सम्मुख रहे। भागते समय पैरों को इतना ऊपर उठाकर ले जायें कि पैर की एड़ियां नितम्ब (चूतड़) को स्पर्श करने को होजायें। जितने लम्बे पग (कदम) दौड़ते समय रख सकें उतना ही अच्छा है। जिस समय दौड़ आरम्भ करें तो पहले ही वेग (तेजी) से न दौड़ें। शनैः शनैः वेग को बढ़ाते जायें। दौड़ने के लिए आपको अपनी पूरी शक्ति लगा देनी चाहिए। न ही दौड़ को सहसा (एकदम) बन्द करना चाहिए। दौड़ चुकने के पश्चात् तुरन्त ही खड़े हो जाना, बैठ जाना वा सो जाना बड़ा ही हानिकारक है। अतः दौड़ने के पश्चात् जब तक श्वास वेग से चलता रहे तब तक भ्रमण करना ही लाभप्रद है। दौड़ने के पश्चात् जब तक शरीर पूर्णतया ठण्डा न हो जाये तब तक जल से हाथ, मुंह, पैर धोना, स्नान करना और खाना पीना कदापि नहीं करना चाहिए। दौड़ने के लिए स्थान खुला हुआ और शुद्ध वायुवाला हो। वहां की भूमि सम हो और कंटक कंकर से रहित हो। विषैले सर्प कीड़े आदि का कोई भय न हो। दौड़ने के समय नासिका द्वारा लम्बे और गहरे श्वास खींचने और कुछ रोकते हुये धीरे-धीरे छोड़ने का अभ्यास करना चाहिए। लम्बे और गहरे श्वास लेने और छोड़ने से व्याकुलता (घबराहट) और श्रान्ति (थकावट) बहुत न्यून होती है। अत्यन्त वेग से श्वास चलने पर भी नासिका द्वारा ही श्वास-प्रश्वास की क्रिया करनी चाहिए।

मुख खोलकर उसके द्वारा श्वासोच्छ्वास करते हुए दौड़ना बहुत हानिकारक है। दौड़ते समय अङ्गों को शिथिल नहीं रखें। हाथों को पीछे की ओर भली-भांति खींचे रहें।

आरम्भ-आरम्भ में दौड़ सौ गज वा एक फर्लाङ्ग से अधिक नहीं लगानी चाहिए। प्रतिदिन थोड़ी-थोड़ी बढ़ाकर एक वा दो

मील वा इससे भी अधिक का अभ्यास अपने सामर्थ्यानुसार करना चाहिए। १०-१५ मील तक भागने का भी अभ्यास किया जा सकता है किन्तु मुख्य बात तो सामर्थ्य और पुष्टिकारक भोजन की है। पुष्टिकारक भोजन के अभाव में तथा शक्ति से अधिक दौड़ने से भी शरीर को हानि होती है। आरम्भ में कुछ दूर दौड़ने पर श्वास फूल जाता है और दौड़नेवाला घबराने लगता है। किन्तु साहस बांधकर दौड़ते रहने से व्याकुलता हट जाती है और साहस भी बढ़ जाता है। गहरे श्वास भी दौड़ में अत्यन्त सहायक हैं। हमारे कबड्डी आदि बहुत से ऐसे देशी खेल हैं जिनमें दौड़ पर्याप्त मात्रा में हो जाती है। यह सदैव ध्यान रखें कि दौड़ते-दौड़ते जब उष्णता बढ़ जाए और श्वास बहुत शीघ्र-शीघ्र वा वेग से आने लगे और फेफड़ों में न समावे तब दौड़ बन्द कर देनी चाहिए। दौड़ आदि पैरों के व्यायाम से हाथी के सूंड के समान पुष्ट जङ्घायें हो जाती हैं।

जो लोग रात दिन बैठे रहते हैं और दौड़, भ्रमण आदि पैरों का व्यायाम नहीं करते उनकी टांगें निर्बल हो जाती हैं। जांघों का मांस सूख जाता है अथवा मेद (चर्बी) बढ़कर जङ्घाओं का मांस ढीला और लटकता रहता है और वे कुरूप और अत्यन्त स्थूल हो जाती हैं। जांघें सर्वथा पतली, अत्यन्त मोटी और ढीली नहीं होनी चाहियें। जिन जङ्घाओं में अंगुली गाड़ने से न गड़े, ऐसी कठोर जङ्घायें स्वस्थ और सबल मानी जाती हैं। किन्तु दौड़ और बैठक के बिना ऐसी जङ्घायें कैसे हो सकती हैं। दौड़ आदि व्यायाम ही जङ्घाओं और पिण्डलियों को सुन्दर, पुष्ट और सबल बनाता है।

दौड़ते समय भी मन को टांगों की पिण्डली और जङ्घा आदि भागों पर एकाग्र करना चाहिए और यह ध्यान करना चाहिए कि मेरे इन अङ्गों की निर्बलता दूर हो रही है और वेद की आज्ञा के

अनुसार "जङ्घयोर्जवः" जङ्घाओं में वेग, स्फूर्ति और बल इत्यादि और "पादयोः प्रतिष्ठा" (अथर्व० १६।६०।२) पांवों (पिण्डलियों) में स्थिरता, सुदृढ़ता वा सुन्दरता आदि गुणों का सञ्चार और प्रवेश होरहा है। इस प्रकार की दृढ़ भावना से वेद की इस पवित्र आज्ञा के अनुसार अत्यन्त लाभ पहुँचता है। पांवों के जङ्घा, पिण्डली आदि भागों में स्फूर्ति, वेग, बल, शक्ति, सुन्दरता, स्थिरता और सुदृढ़ता आदि गुणों का अनुभव अभ्यासी थोड़े दिन में करने लगता है। उसकी जङ्घायें और पिण्डलियां बहुत शीघ्र पुष्ट और बलवान् हो जाती हैं।

तैरना

साधारण व्यायामों में से तैरना भी हमारे शरीर वा स्वास्थ्य दोनों के लिए एक बड़ा उपयोगी व्यायाम है। तैरने से शरीर का बहुत ही अच्छा व्यायाम हो जाता है। बालक युवा, वृद्ध, स्त्री और पुरुष सभी के लिए तैरने का व्यायाम लाभप्रद है। यदि विचारपूर्वक किया जाये तो किसी अवस्था में भी किसी को हानि नहीं होती। और ब्रह्मचारी के लिए तो तैरने का व्यायाम अत्यन्त लाभदायक है। इससे वीर्यरक्षा वा ब्रह्मचर्य की साधना में बड़ी सहायता मिलती है। ब्रह्मचारी और ब्रह्मचर्य के प्रेमी यदि प्रतिदिन एक घण्टा तैरने का व्यायाम करलें तो स्वप्नदोषादि के द्वारा वीर्यनाश का भय वा आशङ्का नहीं रहती। प्रमेह, स्वप्नदोष आदि वीर्यभ्रष्टता के रोग वा दोष बहुत शीघ्र दूर हो जाते हैं। क्योंकि यह वीर्य सम्बन्धी रोगों को दूर करने के लिए सर्वोत्तम औषध है। जो ब्रह्मचारी अन्य साधनों के साथ तैरने का व्यायाम करते हैं उनको स्वप्नदोष आदि रोग नहीं सताते और वे स्थिरवीर्य वा ऊर्ध्वरेता हो जाते हैं। इसलिए वेद भगवान् ने जल की महिमा का गान किया है—

"अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्" ॥ अथर्ववेद १।४।४)

अर्थात् जल में अमृत और औषध है।

जल के महत्त्व को हमारे प्राचीन पुरुष ऋषि-महर्षि लोग भली-भाँति जानते थे। इसलिए जलाशयों और नदियों के तटों पर वे अपने आश्रम बनाकर निवास करते थे। यही कारण था कि वे सब अमोघवीर्य वा ऊर्ध्वरेता होते थे।

व्याकरण के अतिप्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थ महाभाष्य में महर्षि पतञ्जलि जी महाराज लिखते हैं—

"अष्टाशीतिसहस्राण्यूर्ध्वरेतसामृषीणां बभूवुस्तत्रागस्त्याष्टमैऋषिभिः प्रजनोऽभ्युपगतः" ॥ (अ० ४ पा० १ सू० ७८)

८८ हजार ऊर्ध्वरेता ऋषि हुए हैं उन में से अगस्त्य प्रभृति आठ ऋषियों ने सन्तति उत्पन्न की।

कितने ही विचारशील लोग आज-कल भी इस विषय में अनुभव कर चुके हैं कि युवकों के स्वप्नदोष आदि वीर्य सम्बन्धी रोग केवल प्रतिदिन एक घण्टा शुद्ध जल में तैरने से दूर हो जाते हैं। इन रोगों में जब किसी औषध से लाभ नहीं होता तब जल में तैरने का अभ्यास अचूक औषध का काम करता है। इसलिए ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य की साधना वा वीर्यरक्षा के लिये और स्वप्नदोष आदि वीर्य सम्बन्धी रोगग्रस्त व्यक्तियों को इन रोगों से छुटकारा पाने के लिये प्रतिदिन नदी आदि में तैरने का अभ्यास करना चाहिये। जिससे वे उर्ध्वरेता, अमोघवीर्य वा स्थिरवीर्य वाले बन सकें। तैरने में एक विशेष बात यह है कि इस से व्यायाम और स्नान दोनों साथ-साथ हो जाते हैं। इसलिए सहज में ही व्यायाम और स्नान दोनों का एक ही साथ लाभ हो जाता है। तैरने के व्यायाम

से शरीर की अतिरिक्त उष्णता जल के स्पर्श से दूर हो जाती है और रोमकूप स्वच्छ होकर शरीर शुद्ध, निर्मल और पवित्र हो जाता है। यथार्थ में तडाग, नदी, नाले आदि जलाशय ही प्राकृतिक स्नान करने के यथोचित स्थान हैं जिन में तैरते वा स्नान करते समय भाग-दौड़ करने अथवा इसी प्रकार की अन्य जलक्रीडा करने से शरीर और मन दोनों में ही स्वच्छता, स्फूर्ति और उत्साह आदि सद्गुणों की उत्पत्ति और वृद्धि होती है। तैरने से शरीर के सब स्नायुवों और अंग-प्रत्यंगों का स्वयं ही पर्याप्त व्यायाम हो जाता है। नदी के बहते हुए जल की लहरों के परस्पर टकराने से एक विद्युत् उत्पन्न होती है। जो शारीरिक साधारण रोगों को शीघ्र दूर करके हमारे स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा प्रभाव डालती है। तैरने में वैसे तो सभी अवयवों का व्यायाम होता है किन्तु छाती और फेफड़ों को विशेष लाभ पहुंचता है। तैरने से छाती चौड़ी और सारा ही वक्षःस्थल परिपुष्ट और विस्तीर्ण हो जाता है। फेफड़े अत्यन्त शुद्ध और बलवान् हो जाते हैं। तैरनेवाले का सम्पूर्ण शरीर नीरोग, स्वस्थ, सुन्दर, सुडौल, शक्तिशाली, स्फूर्तिमान् और उत्साहयुक्त बन जाता है। गहरे जल में घुसकर प्राणायामपूर्वक धीरे-धीरे बल और आयु की वृद्धि की प्रबल भावना मन में रखते हुए तैरने से विशेष लाभ होता है। जल में गोता मारने से भी बड़ा अच्छा व्यायाम होता है।

तैरना वैसे भी एक प्रकार की विद्या है। इसलिए इसे प्रत्येक मनुष्य को सीख ही लेना चाहिये। अपनी वा दूसरों की प्राणरक्षा के लिए जीवन में इसकी आवश्यकता पड़ ही जाती है। डूबते समय हमारी पोथी वा पुस्तकें कुछ काम नहीं आतीं। तैरना कोई बहुत कठिन कार्य नहीं, थोडासा यत्न करने पर छोटे-छोटे बालक भी इसे सीख लेते हैं। तैरना भी क्या, जल में घुसकर हाथ तथा

पैरों को ही तो हिलाना है। हम देखते नहीं कि छोटे-छोटे कीड़े मकोड़े तक भी तैरना जानते हैं। छोटे-छोटे पशुओं के बच्चे भी किसी नदी तडाग आदि जलाशय में पहुँचते हैं तो आप ही आप बिना सिखाये तैरने लग जाते हैं। फिर मनुष्य जो सर्वश्रेष्ठ प्राणी ठहरा, उसके लिये तैरना कौनसी कठिन बात है, हम प्रतिदिन देखते हैं कि जिन ग्रामों वा नगरों के निकट नदी, तडाग आदि जलाशय होते हैं वहाँ के छोटे-छोटे बालक भी तैरने में अत्यन्त निपुण और निष्णात होते हैं। वे परस्पर देखा-देखी तैरना बिना सिखाये ही सीख जाते हैं।

हां तैरनेवाले को भी सावधान रहना चाहिये। अपनी शक्ति से अधिक तैरने का व्यायाम करने से मनुष्य अधिक थककर गहरे जलाशय नदी में डूब सकता है। जिससे प्राणों की हानि हो सकती है। बहुत अधिक तैरने के कारण लोगों को उन्माद, मूर्च्छा, मृगी और पागलपन हो जाता है। हमारे ऋषियों ने "अत्यन्तं स्नानं वर्जय" अति स्नानादि को वर्जित किया है। इसलिये एक डेढ़ घण्टे से अधिक तैरना भी अच्छा नहीं। जब तैरने का अच्छा अभ्यास हो जाये और किसी प्रकार का सन्देह न रहे तभी गम्भीर जलाशय वा गहरे जल में घुसना चाहिये। बिना तैरने के अच्छे अभ्यास के गम्भीर जलाशय में घुसने से प्राणहानि होने का भय रहता है।

पाश्चात्य देशों के लोग भी तैरने के महत्त्व को भली-भांति समझते हैं। वहां तैरने के लिये बड़ा उत्साह पाया जाता है। अच्छा तैरनेवाले बालकों को ही नहीं, किन्तु अच्छे तैराक युवक-युवतियों का बड़े-बड़े उत्सवों में पारितोषिक देकर तैरने के लिए उत्साह बढ़ाया जाता है। वहां के डाक्टर और शरीर-शास्त्र के पण्डित लोग भी निम्न प्रकार की सम्मतियों द्वारा तैरने का प्रचार करते हैं—

"तैरने से मनुष्य में अद्भुत शक्ति उत्पन्न होती है। जीवन का सञ्चार होता है। शरीर के अङ्गों और प्रत्यङ्गों में नवीन जीवन प्राप्त होता है। बल बढ़ता है और मनुष्य अद्भुत स्वास्थ्य का सञ्चय करता है।"

इस प्रकार के प्रचार से दूसरे देशों में तैरने का महत्त्व बढ़ गया है और वहां के स्त्री-पुरुषों में तैरने का बहुत प्रेम और आदर हो गया है। हमें भी अपने देश में इसी प्रकार तैरने का प्रचार करना चाहिए। जिससें तैरने के व्यायाम द्वारा ही हमारे देश-वासियों का वीर्यसम्बन्धी रोगों से छुटकारा हो, और ब्रह्मचर्य रक्षा में सफलता पाकर जीवन का आनन्द ले सकें।

तैरते समय प्रत्येक को जल की पवित्रता का ध्यान रखना चाहिए। गन्दे, मलिन, मटमैले, दुर्गन्धयुक्त, सड़े हुए तथा वर्षाकाल के नवीन जल में स्नान करने से सिर में पीड़ा तथा अनेक प्रकार के दाद आदि चर्मरोग हो जाते हैं। अत एव शुद्ध, पवित्र, निथरे हुए निर्मल जल के जलाशयों में ही तैरने का व्यायाम करना चाहिए। इस प्रकार के शुद्ध जल में तैरने से ही विशेष लाभ हो सकता है अन्यथा हानि होने की सम्भावना है। अन्य व्यायामों के समान तैरने के समय भी लंगोट के अतिरिक्त अन्य वस्त्र नहीं धारण करना चाहिए।

भ्रमण वा वायुसेवन

रोगी, निर्बल और वृद्ध (बूढ़े) मनुष्यों के लिए ही भ्रमण वा टहलने को भी व्यायाम कहा जा सकता है। जो व्यक्ति आलस्य, रोगादि के कारण कुछ भी व्यायाम न करता हो तो उसका भ्रमण से कुछ न कुछ व्यायाम हो ही जाता है। भ्रमण को कोमल प्रकृति वाले बाबू लोग, रोगी वा बड़े-बड़े पेटवाले भले ही व्यायाम का स्थान दे दें किन्तु कोई ब्रह्मचर्य का पथिक वा ब्रह्मचारी भ्रमण

को ही व्यायाम समझकर इसी के द्वारा ब्रह्मचर्य की साधना करना चाहे तो यह उसकी बड़ी भारी भूल होगी। भ्रमण के द्वारा कोई सात जन्म में भी ब्रह्मचर्य पालन में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। ब्रह्मचर्य की साधना के लिए तो शरीर और मन को थकानेवाला कठोर व्यायाम अत्यन्त आवश्यक है। वैसे भ्रमण रोगी आदि के लिए ठीक है। भ्रमण करने वाले को नगर वा ग्राम से बाहर ऐसे स्थान पर ही जहां का वायु शुद्ध, शीतल, स्वास्थ्यप्रद हो भ्रमण करना चाहिए। भ्रमण वा वायुसेवन के लिए सूर्योदय से पूर्व प्रातः काल का समय ही उत्तम है शौच आदि से निबृत्त होकर प्रतिदिन कुछ मील नियमित भ्रमण करने वा टहलने से स्वास्थ्य का लाभ अवश्य होता है। भ्रमण करते समय नासिका द्वारा लम्बे और गहरे श्वास लेने से अधिक लाभ होता है।

मल्लखम्भ का व्यायाम

मल्लखम्भ के व्यायाम का प्रचार दक्षिण भारत में अधिक है। मल्लखम्भ के व्यायाम से शरीर बहुत शीघ्र ही स्वस्थ और उन्नत हो जाता है। शरीर में व्यर्थ का मेद (चर्बी) नहीं बढता। शरीर के सभी छोटे बड़े जोड़ वा अवयव सुदृढ़ हो जाते हैं। इसके व्यायाम से पेट की नसों को भी बहुत लाभ पहुँचता है। हाथों के स्नायु सुदृढ़ होजाते हैं। सारे शरीर में एक विशेष शक्ति और स्फूर्ति आजाती है। शरीर बड़ा सुन्दर, स्वस्थ और सुडौल बन जाता है। मल्लखम्भ पर जो व्यायाम किये जाते हैं वे एक प्रकार के आसन ही हैं। मल्लखम्भ के व्यायाम से आसनों के समान ही शरीर में स्फूर्ति, हलकापन और आरोग्य की वृद्धि होती है। जो मल्ल (पहलवान) मल्लखम्भ का व्यायाम करते हैं वे अपने शरीर को इतना वश में कर लेते हैं कि वे मल्लयुद्ध (कुश्ती) में बहुत ही कम

हार खाते हैं। उनके ऊपर दूसरों के दाव पेच नहीं चलते। क्योंकि मल्लखम्भ का व्यायाम करनेवाले मल्लविद्या में बड़े निपुण होजाते हैं। मल्लखम्भ के व्यायाम से बहुत शीघ्र और बड़ी अच्छी प्रकार से अपना शरीर वश में आजाता है और जिसका शरीर वश में होता है वह मल्लखम्भविद्या में कुशल होता है। मल्लखम्भ का व्यायाम किसी शिक्षक से ही सीखकर करना चाहिए। बालक इसको शीघ्र सीख सकते हैं, बड़ी आयु वा बुढ़ापे में इसका सीखना बड़ा कठिन है।

मल्लखम्भ शीशम की चिकनी और दृढ़ लकड़ी का होना चाहिए। कमर के समान इसकी मोटाई ठीक है। मल्लखम्भ गाड़ने के पश्चात् भूमि से ६-७ फुट ऊंचा रहना चाहिए। मल्लखम्भ को वृक्ष वा मकान की छाया में ही गाड़ना चाहिए जिससे जल और धूप से उसकी लकड़ी को हानि न पहुंचे। मल्लखम्भ के चारों ओर की मिट्टी अच्छी होनी चाहिए और मल्लखम्भ को कभी-कभी तेल लगाकर उसकी लकड़ी को चिकना करते रहना चाहिये। १२ वर्ष की आयु से ऊपर किसी भी अवस्था में इस व्यायाम को कर सकते हैं। सभी अवस्थाओं में यह लाभदायक है किन्तु वृद्धि अवस्थावाले युवक ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियों के लिये यह मल्लखम्भ का व्यायाम अत्यन्त लाभदायक है।

मुग्दर का व्यायाम

मुग्दर का व्यायाम बहुत प्राचीन काल से अथवा यों कहिये कि आदि सृष्टि से ही चला आरहा है और अपने देश का भी है। यह बहुत प्राचीन व्यायाम है। हमारे प्राचीन साहित्य में इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। इससे यही प्रतीत होता है कि प्राचीन-काल में मुग्दर का व्यायाम बहुत उन्नत था। किन्तु हम अपनी अनेक विद्या वा कलाओं के समान व्यायाम सम्बन्धी बहुत-सी

आवश्यक बातें भी भूल गये हैं। पुनरपि देश में मुग्दर के व्यायाम सम्बन्धी पर्याप्त ज्ञान और आदर की भावना पाई जाती है। अखाड़ों में पहलवान लोग तो प्रायः सभी मुग्दर फेरते ही हैं किन्तु स्कूल-कालिजों में भी इसका थोड़ा बहुत प्रचार पाया जाता है। मुग्दर को जोड़ी भी कहते हैं। मुग्दर फेरने के बहुत हाथ और नियम हैं। इसके हाथ किसी मुग्दर फिराने वाले से सीख लेने चाहियें। इनको लेख द्वारा सिखाना वा समझाना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है।
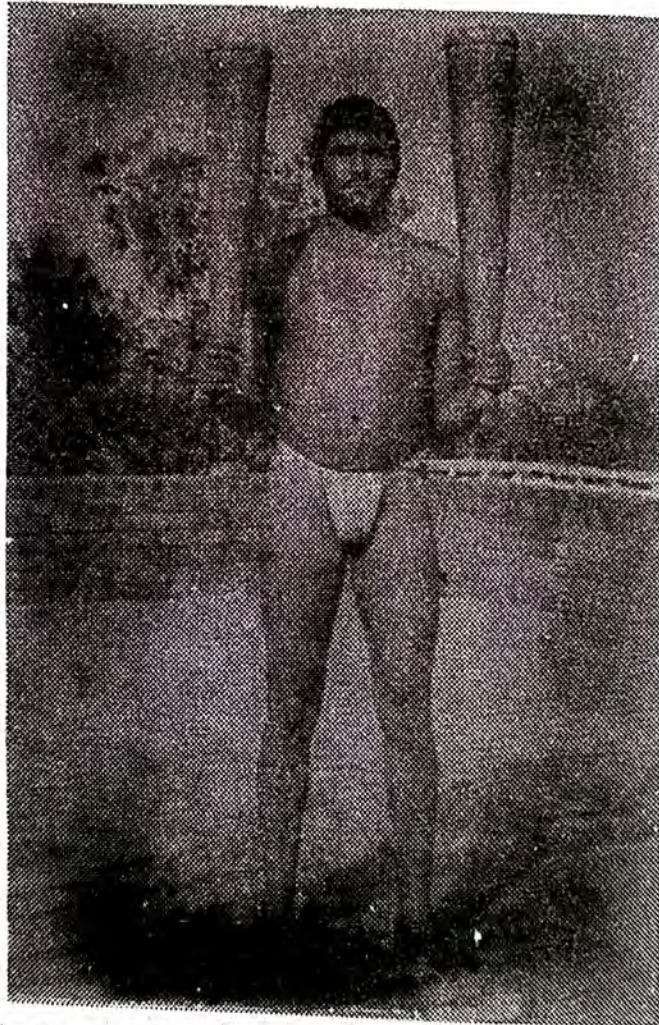
मुग्दर की जोड़ी न बहुत हल्की न ही बहुत भारी होनी चाहिये। आरम्भ में तो मुग्दर का अधिक भारी होना बहुत हानि-

कारक है। अपनी शक्ति के अनुसार ही भार होना चाहिए। जब पूर्ण अभ्यास हो जाये तो भारी मुग्दर घुमाना चाहिए। किन्तु वह भी अपनी शक्ति के ही अनुसार हो। लम्बे मनुष्य के लिये लम्बा और छोटे (नाटे) मनुष्य के लिए छोटा मुग्दर ठीक रहता है इससे विपरीत करने पर चोट लगने का भय रहता है। मुग्दर को दृढ़ता से पकड़ना चाहिए। पकड़ते समय हाथ की अंगुलियां तथा बाहु (बाजु) बाहर की ओर रखने चाहियें। प्रथम एक ही मुग्दर को दक्षिण और वाम दोनों हाथों से घुमाने का अभ्यास करना चाहिए। जब अच्छा अभ्यास हो जाए तो एक साथ पृथक्-पृथक् मुग्दर दोनों हाथों से घुमाने चाहियें। मुग्दर घुमाते समय छाती भीतर घुसी हुई न हो, सम्मुख उभरी और निकली हुई होनी चाहिए। मुग्दर के व्यायाम से यों तो शरीर के प्रत्येक अङ्ग का व्यायाम होता है और सब अंगों पर बल पड़ता है किन्तु हाथ की अंगुलियाँ, पञ्जा, कलाई, कोहनी, कलाई के नीचे का भाग, मोड़े और कोहनी के बीच का भाग अर्थात् भुजदण्ड, कन्धे (मोढ़े) तथा पीठ के पीछेवाले पुट्ठों पर अधिक बल पड़ता है और इनका बहुत ही अच्छा व्यायाम हो जाता है। ये सब अंग सुदृढ़ और बलवान् होजाते हैं। कलाई, भुजदण्ड और हाथों की माँस पेशियों को सुदृढ़, सुन्दर और सुडौल बनानेवाला मुग्दर से बढ़कर अन्य कोई व्यायाम नहीं है। केवल मनोरंजन के लिए नहीं किन्तु शारीरिक उन्नति के के लिए मुग्दर का एक सुन्दर और श्रेष्ठ व्यायाम है।

डम्बल के व्यायाम को लोग हाथों के लिए अच्छा समझते हैं और आज-कल मुग्दर के व्यायाम को प्राय: छोड़ते जारहे हैं। किन्तु मुग्दर के आगे डम्बल का व्यायाम तो कुछ भी नहीं। वैसे मुग्दर से हाथों का व्यायाम तो होता ही है, किन्तु अनेक वर्षों का मेरा अनुभव है कि एक साथ भुजदण्ड आदि हाथों के सब अंग प्रत्यङ्गों को तथा छाती, फेफड़े, सिर, रीढ़ की हड्डी आदि अन्य

सभी अंगों को बहुत शीघ्र स्वस्थ, सुदृढ़ और सुडौल बनानेवाला मुग्दर के समान देशी और विदेशी व्यायामों में कोई भी व्यायाम नहीं है। १६ वर्ष से अधिक आयु के ब्रह्मचारियों को मुग्दर का व्यायाम सायंकाल अन्य कठोर व्यायामों के समान प्रतिदिन करना चाहिए।

पत्थर की नाल (चकली) उठाना, गोला फेंकना भी हाथों के लिए अच्छा व्यायाम है। सैण्डो का डम्बल्स का व्यायाम भी हाथों का अच्छा व्यायाम है। किन्तु लिखनेवाले व्यक्ति को कमानीदार डम्बल्स का व्यायाम नहीं करना चाहिए। इससे हाथों में भी कभी कभी कम्प का रोग हो जाता है।

कूदना

कूदना-फांदना भी अच्छा व्यायाम है। कुदाई अनेक प्रकार की होती है—लम्बी, ऊंची, पैर बाँधकर, दौड़ कुदाई इत्यादि। कुदाई के समय हाथ-पैर ढीले रखने से बहुत न्यून लाभ होता है इसलिए हाथ-पैरों को खिचा हुआ और कठोर रखना चाहिए। कूदते समय प्राणायाम करने से अत्यन्त लाभ होता है वैसे तो कूदने से समस्त ही अंगों का अच्छा व्यायाम होता है किन्तु मुख्यतया उदर (पेट) और पैरों को विशेष बल प्राप्त होता है। कूदने से शरीर में स्फूर्ति आती है, आलस्य दूर भागता है और शरीर के प्रत्येक अवयव में रक्त का सञ्चार होने लगता है। दौड़ने, खेलने, कूदने आदि के व्यायाम से वैसे तो बड़ी आयुवालों को भी लाभ होता है किन्तु १४ वर्ष की आयु तक के बालकों के लिए दौड़ना, कूदना, फाँदना खेलना इत्यादि बहुत ही लाभदायक है। छोटे बालकों से इसी प्रकार के व्यायाम कराने चाहियें जिनमें दौड़ना, कूदना, फाँदना अधिक पड़े। १२ वर्ष से छोटी आयु के बालकों से दण्ड, बैठक, मुग्दर और मल्लयुद्ध आदि कठोर व्यायाम नहीं कराने चाहियें।

आसन

आसनों का व्यायाम भी स्वास्थ्य के लिए अति उपयोगी है। वैसे आसन बहुत हैं किन्तु पांच-सात आसन जो ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य प्रेमी को नित्य-प्रति करने चाहियें, उनके विषय में अति संक्षेप से लिखा जाता है। अधिक विस्तार के लिए हमारी 'आसनों के व्यायाम' पुस्तक पढ़ें, जो पृथक् प्रकाशित हो गई है।

१— शीर्षासन
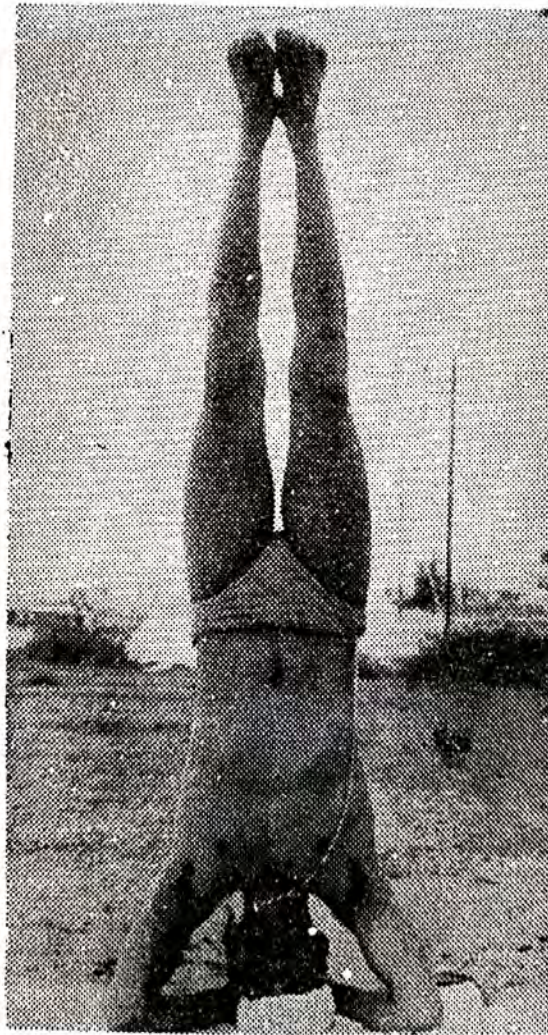
इसके करने की विधि इस प्रकार है— पहले भूमि पर आसन बिछा कर उस पर कपड़े की गोल गद्दी बनाकर रखें और उस पर शिर रख दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर मिला शिर के दोनों ओर दृढ़ता से रखें। पांव को मोड़कर शिरके समीप ले आवें, तत्पश्चात् शरीर को शनैः शनैः ऊपर को उठाते हुए शिर के बल खड़े हो जावें। मस्तिष्क और शिर के बीच का भाग ही वस्त्र पर टिकाना चाहिए। शरीर नितान्त सीधा रहे, पांवों की अंगुलियां ऊपर को खींची हुई और नेत्र खुले रहने चाहियें। घुटने भी मुड़ने न पावें, श्वास-प्रश्वास की क्रिया पूर्ववत् चलती रहे।

शीर्षासन करने के पश्चात् कुछ समय तक सीधा खड़ा रहना चाहिये। कुछ आसनों के अभ्यासियों का मत है कि जितने समय तक शीर्षासन करें उतने ही समय तक सीधा खड़ा रहने से विशेष लाभ होता है। यदि समय के अभाव से अधिक विलम्ब तक खड़े न रह सकें तो अन्य खड़े होकर करने के आसन करने चाहियें।

शीर्षासन एक दो सैकिण्ड से आरम्भ करना चाहिए और शनैः शनैः अपनी शक्ति तथा भोजन के अनुसार इसके करने का समय बढ़ा लेना चाहिए। पन्द्रह वा बीस मिनट का अभ्यास हो जाने पर वीर्य सम्बन्धी स्वप्नदोष, धातुक्षय, प्रमेहादि विकार दूर होकर वीर्य की ऊर्ध्वगति हो जाती है। स्वास्थ्य सुन्दर तथा चेहरा लाल हो जाता है। बुद्धि तथा नेत्रज्योति बढ़ती है, जठराग्नि तीव्र होती है, बढ़ी हुई प्लीहा (तिल्ली) और यकृत् (जिगर) ठीक हो जाते हैं। अर्श, गुल्म, उदावर्त, आध्मान, अजीर्ण, कोष्ठबद्धता, बहुमूत्र प्रभृति उदररोग तथा फोड़े-फुन्सी, कुष्ठ, कण्डू (खाज), पामा, पीनस आदि चर्मरोगों में भी लाभदायक है।

❀❀❀
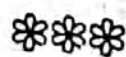
२—हस्तपादांगुष्ठासन
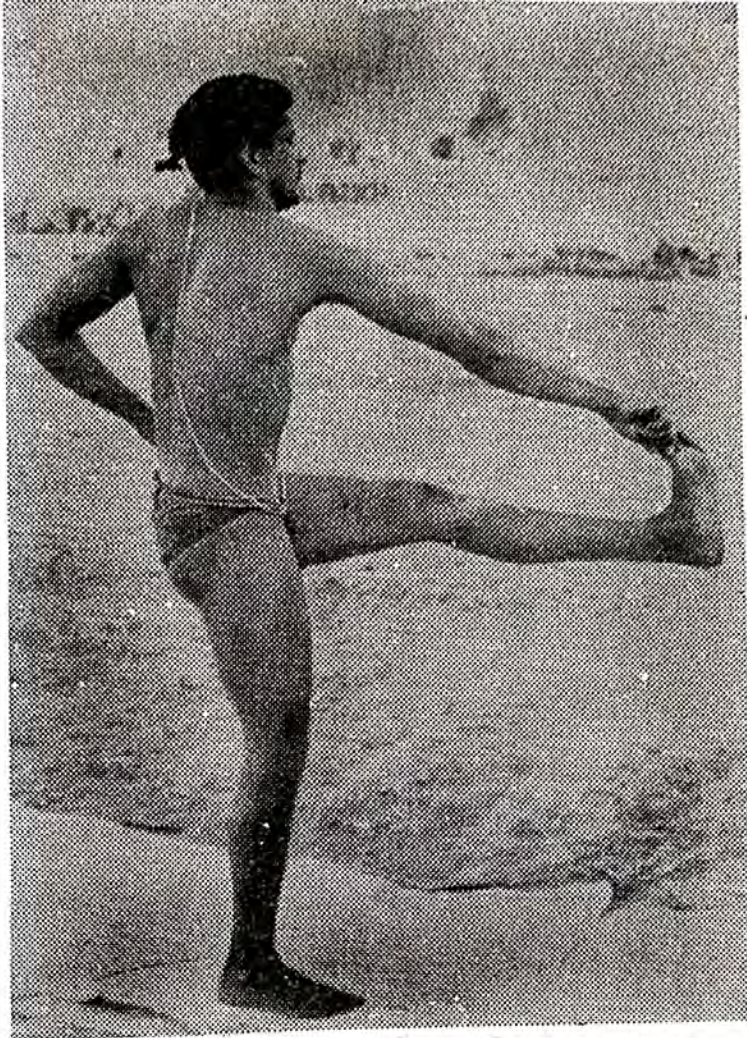
दोनों हाथों को कटि (कमर) पर रखकर पीधे खड़े हो जावें, एक पांव को शनैः शनैः ऊपर को उठावें, पांव घुटने में से न मुड़े जब पांव सम्मुख आजावे तब जिस ओर का पांव हो उसी हाथ से पांव के अंगूठे को पकड़ें, श्वास अन्दर रहना चाहिए। इसी प्रकार दूसरे हाथ तथा पाँव से भी करें। इस आसन को चित्त लेटकर भी कर सकते हैं।

इस आसन के करने से ग्रीवा, कटि और उदर के विकार नष्ट होते हैं, पिंडली जङ्घा आदि के लिए भी यह लाभदायक है।

३—सिद्धासन

समतल स्थान पर बैठकर बायें पांव की एड़ी गुदा और अण्डकोष के बीचके स्थान पर जमाकर रखें और दाहिने पांव की एड़ी मूत्रेन्द्रिय के ऊपर तथा पंजा बांयें पाँव की जंघा और पिण्डली के बीच में रहे। दोनों पांवों के गट्टे मिले हुए रहें, ठोड़ी का झुकाव कुछ नीचे की ओर करें अथवा कण्ठमूल में लगावें, हाथ घुटनों पर रहें, दृष्टि नासिकाग्र भाग पर स्थिर रहे, मेरुदण्ड ग्रीवा आदि सभी सम रेखा में सरल रहने चाहियें।

यह आसन योगाभ्यास ध्यान आदि के लिए सर्वोत्तम है, ब्रह्मचर्य की रक्षा में भी परम सहायक है, अतः इसका अभ्यास कम से कम एक दो घण्टे का तो अवश्य ही कर लेना चाहिए। इस आसन को किसी भी समय पढ़ते-लिखते, खाते-पीते कर सकते हैं

इस आसन के अभ्यास से मन स्थिर, जठराग्नि दीप्त और हृदय बलवान् होता है। श्वास, कास, अतीसार बहुमूत्र, स्वप्नदोष, प्रमेहादि रोग नष्ट होते हैं। विषयवासना शांत होकर वीर्य की ऊर्ध्वगति हो जाती है। इसकी सिद्धि से ब्रह्मचर्य की भी सिद्धि होती है, अतः ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य की सिद्धि तथा वीर्यरक्षा के लिये इसका विशेष अभ्यास करना चाहिए।

४ — पश्चिमोत्तानासन

भूमि पर बैठकर दोनों पाँवों को सीधा पसार दें, कुछ आगे को झुकते हुए दोनों हाथों से दोनों पांवों के अंगूठों को पकड़ लें और साथ ही श्वास को बाहर निकालकर पेट को अन्दर खेंचें तथा शिर घुटनों पर रखें, यदि हो सके तो पांवों के बीच में भूमि पर रखने का प्रयत्न करें। पांव घुटनों में से न मुड़ें और पांवों के पंजे भी आगे को तने रहें।

पेट के लिए यह आसन सर्वोत्तम है, इससे जठराग्नि प्रदीप्त होती है, पेट हल्का तथा कोमल रहता है, पेट की नस-नाड़ियां मल रहित होजाती हैं, चर्बी कम होकर पेट छोटा होजाता है। अजीर्णता, मन्दाग्नि, मलावरोध, उदरपीड़ा प्रभृति उदरविकार समूल नष्ट होते हैं। यकृत् और प्लीहा निर्दोष होजाते हैं, कुबड़ापन दूर होता है, कद और आयु की वृद्धि होती है।

५—सर्वाङ्गासन
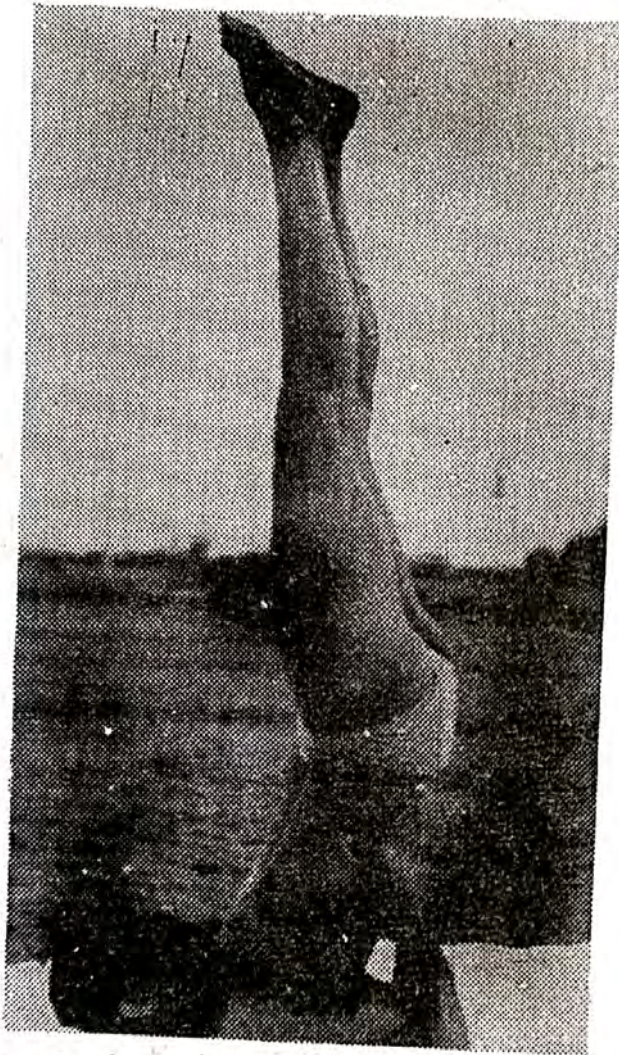
समभूमि पर चित्त लेट जावें और हाथों को सीधा पसारदें, पश्चात् पांवों को शनैः शनैः ऊपर को उठावें और हाथों को कटि

पर लगाकर सहारा लेकर इतना सीधा करदें कि केवल कन्धों के ऊपर का भाग ही भूमि पर टिके। सम्पूर्ण शरीर खिंचा हुआ हो और श्वास अन्दर रहे, ठोड़ी कण्ठमूल में लगावें तथा दृष्टि पांव के अंगूठों पर जमावें।

इस आसन के करने से यकृत्, प्लीहा, पक्वाशय, आंतें शुद्ध होकर जठराग्नि तीव्र होती है, कोष्ठबद्धता दूर होती है। कण्ठ के रोगों में लाभदायक है। मिर्गी, गठिया तथा वीर्यरक्षा के लिये उत्तम है।

६--हलासन

सर्वाङ्गासन की स्थिति से ही पांवों को शनैः शनैः शिर के पीछे टेकदें, पांव सीधे रहें और हाथों को भूमि पर सीधा पसारदें तथा श्वास को बाहर निकाल दें।

इसके लाभ भी सर्वाङ्गासन के समान ही हैं। इसके करने से विशेषतया आंतों को शक्ति मिलती है, कद बढ़ता है, कटिशूल में उत्तम है।

७--मयूरासन

इस आसन को करने के हाथों के पंजे पांवों की ओर कर दृढ़ता से भूमि पर जमावें, हाथों के पंजों में एक बालिश्त से अधिक अन्तर न रहे। कोहनियों को मिलाकर नाभि पर लगा पांवों को ऊपर उठावें, दोनों पांव मिले हुए तथा तने हुए रहने चाहियें, शिर ऊपर को उठा हुआ रहे। मोर की भांति सम्पूर्ण शरीर का भार पंजों पर सन्तुलित रहना चाहिए। आरम्भ में इस आसन का अभ्यास किसी ऊंचे स्थान मेज, कुर्सी, चबूतरे आदि पर करना चाहिए।
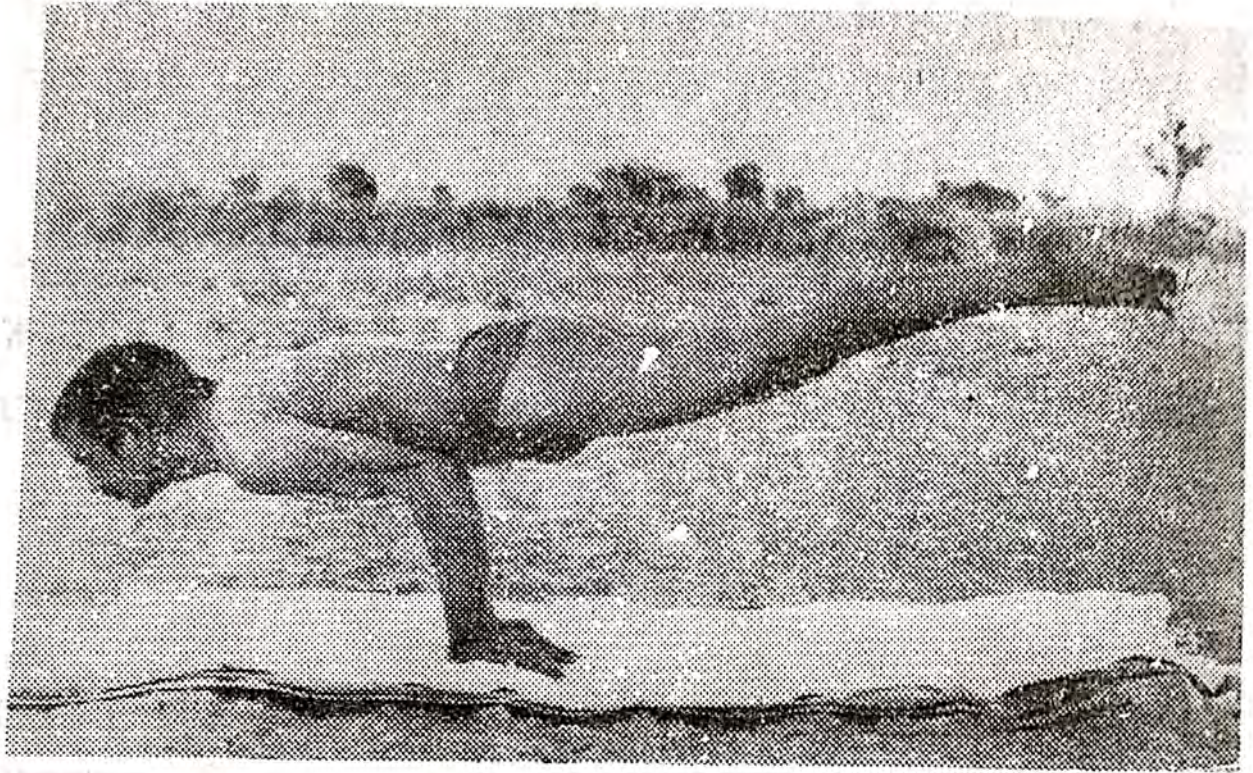
मयूरासन

इस आसन के करने से जठराग्नि तीव्र होने के कारण पेट के रोग नहीं होते। हाथों के पहुंचे दृढ़ होते हैं, पेट की चर्बी भी कम हो जाती है। संग्रहणी, अतिसार आदि आंतों के रोगों में लाभदायक है।

॥ इति ॥